अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

वर्ष-41, अंक-11, 11-31 जनवरी, 2018

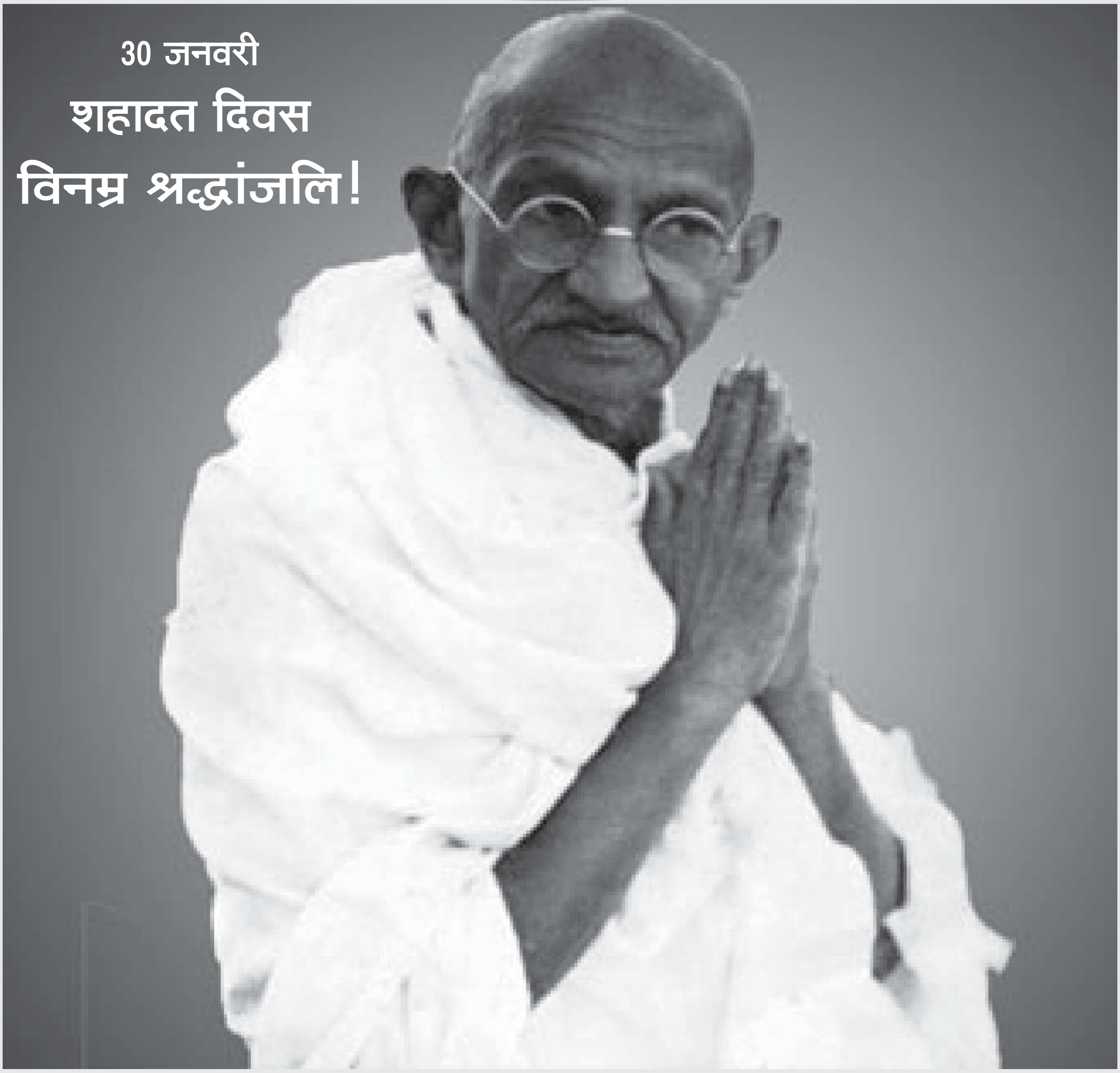

''अगर कोई मुझे करीब से गोली मारे और मैं मुस्कुराकर हृदय में ईश्वर का नाम जपते हुए गोली का सामना करूं तो मैं सचमुच बधाई का पात्र कहा जाऊंगा।'' -गांधी

सर्व सेवा संघ
(अखिल भारत सर्वोदय मंडल)
द्वारा प्रकाशित

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र
सर्वोदय जगत
सत्य, अहिंसा एवं सर्वोदय-सम्पूर्ण क्रांति का संदेश वाहक

वर्ष : 41, अंक : 11, 16-31 जनवरी, 2018

प्रधान संपादक
बिमल कुमार
मो. : 9235772595
संपादक
अशोक मोती
फोन : 9430517733

संपादक मंडल
डॉ. रामजी सिंह **भवानी शंकर 'कुसुम'**

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ, साधना केन्द्र
राजघाट, वाराणसी-221001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
Website : sssprakashan.com

शुल्क

मूल्य	:	05 रुपये
वार्षिक	:	100 रुपये
आजीवन	:	1000 रुपये

खाता संख्या : 383502010004310
IFSC No. UBIN-0538353
Union Bank of India
Rajghat, Varanasi

इस अंक में...

1. गांधी विचार की हत्या जारी है... 2
2. अहिंसा की ताकत... 3
3. मीठा झगड़ा... 5
4. 'बा' - गांधी की दोस्ती... 8
5. हे राम : गांधीजी के अंतिम सात दिन... 10
6. कर्म करते हुए मृत्यु... 15
7. मैं कुछ कहना चाहता हूं... 18
8. क्या हम गांधी के जिन्दा शहीद हो... 19
9. कविताएं... 20

प्रधान संपादक की कलम से...

गांधी विचार की हत्या जारी है

गांधीजी की हत्या जिन विचारों से प्रेरित होकर की गयी थी तथा उनकी हत्या के बाद जिन विचारों के लोगों ने खुशियां मनायी थीं, मिठाइयां बांटी थीं, वे विचार आज प्रबल रूप से अपने झूठ व नफरत को फैलाकर पुनः समाज को बांटने का काम कर रहे हैं। गांधी के विचार की हत्या का सिलसिला जारी है। फेसबुक एवं व्हाट्एप व अन्य नये माध्यमों से गांधी के खिलाफ झूठा व निम्न स्तरीय प्रचार चरम पर है। इन विचारों से जिस राजनीतिक शक्ति को फायदा मिल रहा है, वह राजनीतिक शक्ति गांधी के विचारों को मानने वालों में अधिक से अधिक फूट डालने का प्रयास भी कर रही है। गांधी-जन यदि आपस में एक नहीं होते हैं, तो वे उनके षड्यंत्रों को सफल बनाने का माध्यम बन जायेंगे। और, अपरोक्ष रूप से गांधी विचार को कमजोर करने के जिम्मेदार भी माने जायेंगे।

गांधी विचार की हत्या के प्रयास दो स्तरों पर चल रहे हैं। एक लोक की एकता, श्रम-मूलक लोकशक्ति की एकता को न बनने दिया जाये। आजादी मिलने के दौरान भारत ने विभाजन का तथा सांप्रदायिक हिंसा का दंश झेला था। किन्तु भारत की जनता ने सांप्रदायिकता की राजनीति करने वालों को कई वर्षों तक अस्वीकार कर दिया था। यह तो जब दो पीढ़ियां गुजर गयीं, और सांप्रदायिकता के राजनीतिक विमर्श को नये झूठ के साथ गढ़ा गया, तब उसका राजसत्ता तक पहुंचना संभव हो पाया। इसके दो प्रमुख कारण थे। एक तो यह कि सत्ता प्रतिष्ठान राज्य-पूंजीवाद से खुले पूंजीवाद के दौर में प्रवेश कर गया तथा दूसरे बहुत से तथाकथित धर्म निरपेक्ष शक्तियों ने सांप्रदायिक शक्तियों का सहयोग दिया। सार्वजनिक जीवन में भ्रष्टाचार के कारण भी जनता का मोहभंग हुआ था।

यदि आजादी के बाद के चालीस वर्षों तक भारत में धर्म के आधार पर राष्ट्र की कल्पना को अस्वीकार किया गया, तो पाकिस्तान की बहुसंख्य जनता ने भी धर्म के आधार पर राष्ट्र के विचार को अस्वीकार कर दिया। पाकिस्तान की बहुसंख्य जनता ने अपने को स्वतंत्र कर बांग्लादेश का निर्माण कर धर्म आधारित राष्ट्र को अस्वीकार कर दिया था। बाद में पाकिस्तान के नाम पर जो बचा, उसे स्वयं को पुराने पाकिस्तान (सन् 1971 के पूर्व के पाकिस्तान) का वारिस कहने का कोई नैतिक आधार नहीं था। इस पाकिस्तान में भी तीन क्षेत्रों के लोग पाकिस्तान से अलग होना चाहते हैं।

धर्म के आधार पर राष्ट्र बनते नहीं, टूटते हैं। आज गांधी के विरोध में जो हिन्दू राष्ट्र की बात करते हैं, यदि वे सफल हुए तो राष्ट्र का टूटना वैसे ही शुरू हो जायेगा जैसे पाकिस्तान का टूटना शुरू हो चुका है।

गांधी विचार की हत्या का प्रयास दो अन्य स्तरों पर भी हो रहा है। एक, पूंजी के केन्द्रीकरण एवं वैश्विक बाजार के माध्यम से लूट व शोषण की प्रक्रिया तेज हो गयी है। जल-जंगल-जमीन, खनिज आदि से जुड़े परंपरागत समुदाय बेदखल किये जा रहे हैं तथा धीरे-धीरे इनका अस्तित्व इतिहास का विषय बन जायेगा। इसके साथ ही प्रकृति प्रदत्त इन जीवन आधारों पर केन्द्रीकृत वैश्विक पूंजी का पूर्ण नियंत्रण स्थापित हो जायेगा। यह प्रक्रिया तेज हो सके इसके लिए लोक समुदाय, लोक स्वामित्व एवं लोकसत्ता के विचार को जड़मूल से खत्म करने का कुचक्र जारी है। ग्राम गणराज्य की परिकल्पना को हर स्तर पर खत्म किया जा रहा है।

एक तीसरी बात, सत्याग्रह एवं रचनात्मक कार्यक्रमों द्वारा शोषणकारी व्यवस्था का विरोध एवं नयी नैतिकता मूलक सामाजिक रचना का विकल्प खड़ा करने का काम छूट-सा गया है। कुछेक आयोजन एवं अनुष्ठानिक किस्म के कार्य दिखते हैं। किन्तु राजसत्ता एवं पूंजीसत्ता से अनुदान पाने का लोभ तथा संस्थाएं बचाये रखने की विवशता अहिंसक क्रांति के तेज को कम कर रही हैं। इनके तेज के कमजोर पड़ने से भी गांधी विचार की हत्या जारी रखने वालों को बल मिल रहा है।

आज की परिस्थिति में अहिंसक क्रांति के कार्य की धार को तेज करने तथा श्रममूलक नैतिक लोक एकता का निर्माण करने का पुरुषार्थ ही गांधी विचार को जीवित रखने का माध्यम बन पायेगा।

बिमल कुमार

अहिंसा की ताकत

❑ महात्मा गांधी

जब सशस्त्र सैनिकों की पूरी-की-पूरी डिवीजनें गोलियों की बौछार में स्वयं को झोंक देती हैं और वहीं ढेर हो जाती हैं तब स्वतंत्रता का उपभोग कौन करता है? वही तो, जो उनकी लाशों पर से होकर आगे बढ़ते हैं और किला फतह करते हैं!

तमाचा सचेत करता है, निर्भय बनाता है और सबसे बड़ी बात तो यह कि वह मरने की शक्ति देता है। जालिम आदमी की नजर में यह व्यर्थ का विरोध है और वह इसके लिए तैयार ही नहीं होता। अतः उसके भाग जाने की संभावना रहती है। किन्तु इसे मैं गौण समझता हूं। उस स्त्री में जो जोश आ जाता है, वह उसे अपने-आपको मृत्यु को भेंट देने की शक्ति देने के लिए पर्याप्त है। वह जालिम आदमी उससे लड़े, इसके पहले ही उक्त स्त्री मृत्यु की शरण में पहुंच चुकी होती है, क्योंकि वह तो मृतप्राय होकर ही जूझती है, वह प्रहार करने का खयाल नहीं करती। उसे तो केवल (राम-नाम की) रट लगानी है। सभी परिस्थितियों के लिए मैं यह उपाय सुझाता हूं तथा यह उन बहनों के लिए है जो पवित्र हैं और अहिंसा द्वारा ही अपनी रक्षा करना चाहती हैं। आपबीती के आधार पर मैंने यह लेख लिखा है। मैं जब उस सलाख को पकड़े ही रहा तब मैंने मन-ही-मन मरने की तैयारी कर ली थी। मारने वाले को मैं चोट नहीं पहुंचा सकता था। किन्तु यदि मेरा हाथ वहां से छूट गया होता तो यह जानते हुए भी कि यह व्यर्थ है, मैं अपने हाथ-पांव तो चलाता ही रहता, शायद तमाचा मारता या शायद दांतों से काटता, किन्तु मरते दम तक जूझता रहता। इस प्रकार जूझते रहने पर भी उसमें हिंसा न होती, क्योंकि मैं उसे चोट पहुंचाने में असमर्थ था और चोट पहुंचाने का मेरा इरादा भी नहीं था। मेरा उद्देश्य तो केवल मर जाने और यदि उसकी गहराई में उतरें तो इस अपमानजनक परिस्थिति से मरकर भी मुक्त हो जाने का था। अहिंसा की यही परीक्षा है। उसका उद्देश्य दुःख देना नहीं होता और न उसका परिणाम ही दुःख होता है।

'मेडिकल ज्यरिस्प्रूडेंस' (चिकित्सीय विधिशास्त्र) भी इसे मानता है कि जब तक स्त्री 'रिलैक्स' न करे (शिथिल न हो) तब तक कामी पुरुष अपनी इच्छा पूरी नहीं कर सकता। जो स्त्री मृत्यु की शरण में नहीं जाना चाहती वह, अनिच्छापूर्वक ही क्यों न हो, शिथिल पड़ जाती है, प्रतिरोध करना छोड़ देती है और कामी के चंगुल में फंस जाती है। जिसमें जान पर खेल जाने की भावना आ गयी है, वह या तो बंधनों को तोड़ देती है या फिर स्वयं टूट जाती है। इतनी शक्ति प्राणी-मात्र में है। सच बात तो यह है कि जीने का लोभ इतना ज्यादा होता है कि मनुष्य मरने तक संघर्ष ही नहीं करता। यदि कोई स्त्री इतना संघर्ष करे तो एक मनुष्य से जूझते हुए वह टुकड़े-टुकड़े हो जायेगी और लड़ते हुए अपनी हड्डियां-पसलियां तोड़ लेगी।

आसमान से मौत बरपा करने वाली हमलावरों के खिलाफ, जिनसे सत्याग्रही कोई संपर्क भी स्थापित नहीं कर सकते, सत्याग्रह कैसे काम आ सकता है?

आत्मसमर्पण करने के बजाय अहिंसक रीति से अपने प्राण उत्सर्ग करने से।

लेकिन तब स्वंत्रता का उपभोग करने के लिए रहेगा कौन?

वे, जो बच जायेंगे—यानी अगर बच गये तो! लेकिन तुम्हारे सवाल के जवाब में मैं भी एक सवाल पूछूं? जब सशस्त्र सैनिकों की पूरी-की-पूरी डिवीजनें गोलियों की बौछार में स्वयं को झोंक देती हैं और वहीं ढेर हो जाती हैं तब स्वतंत्रता का उपभोग कौन करता है? वही तो, जो उनकी लाशों पर से होकर आगे बढ़ते हैं और किला फतह करते हैं! लड़ने वाला सिपाही कभी भी स्वतंत्रता के फलों का रसास्वादन करने की आशा नहीं करता। लेकिन अहिंसा के प्रसंग में हर व्यक्ति यह मानकर चलता जान पड़ता है कि अगर अहिंसक पद्धति की सफलता का उपभोग करने के लिए कम-से-कम वह जीवित नहीं रहा तो उक्त पद्धति विफल मानी जानी चाहिए। यह अयुक्तियुक्त और अन्यायपूर्ण भी है। सशस्त्र संघर्ष से भी ज्यादा सत्याग्रह पर यह बात लागू होती है कि जीवन खोकर ही जीवन मिलता है।

सच्ची अहिंसा के नाम से ही भड़क उठने की जरूरत नहीं है। इस अहिंसा को हम स्पष्टता के साथ समझ लें और इसकी सर्वोपरि उपयोगिता को स्वीकार कर लें, तो यह आचरण करने में उतनी कठिन नहीं है जितनी कि मानी जाती है। *लेकिन देश में जो उपद्रव होते हैं, उनका क्या हो? हिन्दू-मुसलमानों के झगड़ों का क्या इलाज हो? चोर-डाकुओं के उपद्रव के समय वह क्या करेगा? जब ऐसा हो तब मर-मिटने का*

संकल्प कर लेना-भर काफी नहीं है। इस तरह मर-मिटने के लिए भी योग्यता प्राप्त करनी चाहिए। मैं हिन्दू होऊं तो मुझे मुसलमानों तथा अन्य विधर्मी जातियों के प्रति अपने अंदर भाईचारे का विकास करना चाहिए। मुझे अपने आसपास रहने वाले विधर्मियों के साथ ऐसा बर्ताव करना चाहिए, जैसा मैं अपने सहधर्मियों के साथ करता हूं अथवा होना चाहिए। उनकी सेवा के अवसर खोजकर उनकी सेवा करनी चाहिए। इस सेवा में डर नहीं होना चाहिए, कृत्रिमता नहीं होनी चाहिए। अहिंसा के शब्दकोष में भय के लिए स्थान ही नहीं है। अपने अंदर ऐसा भाईचारा विकसित करने वाले ही सांप्रदायिक दंगों में मर-मिट सकते हैं। यही बात चोर-डाकुओं के बारे में भी है। चोर-डाकुओं की सामान्यतः कोई विशेष जाति नहीं होती, फिर भी इतना तो हम जानते ही हैं कि सामान्यतः अमुक जातियों में चोर-डाकू पाये जाते हैं। उनके साथ हमें संपर्क साधना चाहिए। उदाहरण के लिए, रविशंकर महाराज इसी कोटि के व्यक्ति हैं। उन्होंने यह शुभ कार्य सहज भाव से किया है। ऐसा करने वाले बहुत कम मिलेंगे। यह क्षेत्र बहुत विशाल है। इसमें सच्चा प्रेम होने के अतिरिक्त और किसी योग्यता की आवश्यकता नहीं होती।

पूर्ण अहिंसा को न वाणी की आवश्यकता है, न लेखनी की। और अगर इन दोनों साधनों की आवश्यकता न हो, तो संघ-शक्ति की आवश्यकता होगी ही नहीं। इस सत्य को मेरी कल्पना स्वीकार करती है कि अहिंसामय स्त्री या पुरुष का संकल्प मात्र काम करता है। ऐसा मैंने शास्त्रों में पढ़ा भी है, लेकिन इसका अनुभव बहुत कम किया है। इतना कम कि उसे प्रमाणस्वरूप मानने को मैं किसी से नहीं कहूंगा। इसलिए मैंने इच्छा और आशा की है कि अहिंसकों के सुसंगठित दल हों। साथ ही मैंने यह भी माना है कि यदि प्रत्येक प्रांत में पूर्ण अहिंसा के छिटपुट भक्त हों तो उनमें अकेले खड़े रहने की शक्ति अवश्य होनी चाहिए, अर्थात् सभी सैनिक हों और सेनापति भी!

''आत्मा पर अधिकार मत होने दो'', अर्थात् जो आपकी आत्मा स्वीकार न करे, ऐसा काम मत करो! यदि शत्रु आपसे कहे, ''कान पकड़ो, नाक रगड़ो, उठो-बैठो'' तो आप इसमें से कुछ न करें। लेकिन यदि कोई आपका घर-बार लूटे, तो उसे लूटने दें, क्योंकि जब आप अहिंसा के पुजारी बने थे, तभी आपने निर्णय कर लिया था कि आपकी आत्मा के साथ आपके घर-बार का कोई संबंध नहीं है। जिसे आप अपनी संपत्ति मानते हैं उस पर अपना अधिकार आप तभी तक मानेंगे जब तक संसार सहज ही रहने दे। ''मन पर अधिकार मत करने दो'' का अर्थ यह है कि आप किसी प्रलोभन में न फंसें। मनुष्य का मन प्रायः इतना निर्बल होता है कि कोई आदमी उससे अनेक तरह की मीठी बातें करे या लालच दे तो वह उसकी बातों में आ जाता है। इसका अनुभव हम सामाजिक व्यवहार में रोज करते हैं। *कमजोर मन का आदमी सत्याग्रही नहीं हो सकता। सत्याग्रही की 'नहीं' सदा 'नहीं' रहती है, 'हां' सदा 'हां' रहती है। ऐसा व्यवहार करने वाला मनुष्य ही सत्यनिष्ठ हो सकता है और वही अहिंसा का पालन कर सकता है।*

यहां हठ और दृढ़ता के बीच का भेद समझ लेना उचित है। यदि अपनी बुद्धि स्वीकार कर ले, फिर भी जो एक बार भूल से 'नहीं' कह दिया तो उसी पर अड़े रहना हठ है, मूर्खता है। 'नहीं' या 'हां' कहने से पहले ही मनुष्य को पक्का विचार कर लेना चाहिए। ''उनकी अधीनता कभी स्वीकार मत करना'' का अर्थ तो स्पष्ट है। उसके आगे झुका न जाये, उसका उद्देश्य सफल न होने दिया जाये। *हिटलर महोदय स्वप्न में भी ब्रिटेन पर कब्जा करना नहीं चाहते। वे तो उससे हार स्वीकार करवाना चाहते हैं। हारे हुए से तो जीतने वाला चाहे जो मांगे, उसे वह देना पड़ता है। लेकिन जो हार नहीं मानता, उससे तो जब तक वह मर न जाये तब तक शत्रु को लड़ना पड़ता है। इसीलिए सत्याग्रही ने यह निर्णय किया कि 'शत्रु' मारे, उससे पहले ही मर जाना चाहिए, अर्थात् शरीर का मोह छोड़ दे और आत्मा की विजय प्राप्त करे। और फिर जब मरने का संकल्प कर लिया तो फिर मारकर क्यों मरें? मारते हुए मरने का अर्थ है हारकर मरना!* यदि हम शत्रु को जीते-जी कब्जा न लेने दें, तभी तो वह हमारी जान लेकर, कब्जा लेने का हौसला रखेगा। लेकिन जिसने विपक्षी को मारकर जीने का विचार ही छोड़ दिया हो, उसको मारने में शत्रु को मजा नहीं आयेगा। प्रत्येक शिकारी को इस बात का अनुभव होता है। गाय-भैंस का किसी ने शिकार किया हो, ऐसा सुनने में नहीं आया।

अहिंसा का प्रयेग मनुष्य तक ही सीमित रखना है या उसकी परिधि में मनुष्येतर प्राणी भी आते हैं?

कांग्रेस के लिए तो अहिंसा राजनीति के क्षेत्र के निमित्त ही है, इसलिए वह मनुष्य तक ही सीमित हो सकती है। इसलिए हमारे प्रयोजन के लिए संपूर्ण अहिंसा का मतलब राजनीतिक क्षेत्र में हर प्रकार की अहिंसा ही है। इसका अर्थ यह हुआ कि कौटुम्बिक संबंध में, सरकार के साथ अपने संबंध में, समाज में उपद्रव हो तब और विदेशी हमले से सामना पड़ने पर हमें अहिंसा का प्रयोग करना है। तात्पर्य यह कि मनुष्य-मनुष्य के संबंध की हद तक हमारा व्यवहार अहिंसामय हो, इतना काफी है।

मांसाहारी या अंडाहारी अहिंसक कहला सकते हैं या नहीं?

इससे अहिंसा में कोई बाधा नहीं पड़ती, क्योंकि अगर पड़ेगी तो हमें मुसलमानों और ईसाइयों तथा बहुत-से हिन्दुओं को अपने अहिंसा-क्षेत्र के साथियों के रूप में त्याग देना होगा। मैंने देखा है कि बहुत-से मांसाहारी शाकाहारियों से अधिक अहिंसक हैं।

...क्रमशः अगले अंक में

गतांक से आगे...

मीठा झगड़ा

❑ **महादेव देसाई**

भीख मांगना भी घर वाले से पूछे बिना नहीं छोड़ा जा सकता। मर्द के बिना एक कदम भी आगे नहीं रखा जा सकता। तोबाह, प्रभु, तोबाह!'

राधा : 'ओहो! तूने ठीक ही बात कह दी, सेवा द्वारा मुक्ति। मैं जो समझाने को जूझ रही हूं वह तूने एक वाक्य में मुझसे कह दिया। बहन, मुझे तो यह सेवा द्वारा मुक्ति चाहिए। और सेवा द्वारा मुक्ति प्राप्त करने वाली बहनों के उदाहरण तुझे चाहिए? जैन आर्जाएं (अर्जिकाएं, साध्वियां) अपना जीवन समाज के लिए ही अर्पण करती हैं न? रोमन कैथलिकों में साध्वी सेविकाएं सैकड़ों-हजारों हैं। उनके जीवन किसके लिए अर्पित हुए हैं? उन बुआजी का आपरेशन कराया, तब उनकी सेवा करने वाली कैथलिक नर्स थी, यह तुझे याद है? कैसी थी उसकी सेवा? वह सचमुच ही ध्यान-मूर्ति थी। उसके तो पैर धोकर पूजने का मन होता है। फ्लॉरेन्स नाइटिंगल का जीवन-चरित्र तो तू उसी दिन पढ़ रही थी। एमिली हॉबहाउस की बात बापू से सुनी थी न? हमारी मीराबहन यहां किसलिए आयी हैं?'

लक्ष्मी : 'सभी विदेशी उदाहरण। ये तो सब नये जमाने की बातें हैं। हमें पुरानी आंखों से नये तमाशे नहीं देखने हैं।'

राधा : 'अरे वाह रे बुढ़िया! तेरे तो बाल सफेद हो गये दीखते हैं। अच्छा, बौद्ध भिक्षुणियां तो इस जमाने की नहीं न? जमाने की बात जाने दे। हमें नया जमाना बनाना है।'

लक्ष्मी : 'नहीं-नहीं। यह तो मैं हंस रही हूं। परंतु तेरी समाज-सेवा की बात तो मानो समझ ली। तेरी बतायी स्त्रियों में सच्ची सेविका कितनी होंगी, यह राम जाने। तू किसी सेविका से मिल आये और उसकी शादी करने के बारे में राय पूछ आये तो पता चले। परंतु अपने पुराने जमाने का एक उदाहरण लूं?'

राधा : ' ले, बहन, ले; तू कहती है मुझे बहस का शौक है, तुझे उदाहरण का शौक दीखता है।'

लक्ष्मी : 'अपनी सेविकाओं द्वारा रोगियों की सेवा के उदाहरण तूने दिये। उन्होंने किसी मरे को जिलाया हो, इसका उदाहरण तू दे सकती है? तुझे तो नाइटिंगल के आगे सावित्री की कदर क्यों होगी? सावित्री ने तो पति-भक्ति से पति को भी जीता और यमराज को भी जीता। उसने मरे पति को केवल भक्ति के द्वारा पुनः प्राप्त कर लिया और ऐसा करके सहज ही ईश्वर को भी प्राप्त कर लिया। तेरी कुमारियां खोये प्रभु को प्राप्त कर सकती हों तो भी बड़े कष्ट से प्राप्त करेंगी। तू तो बड़ी-बड़ी बातें करती है, पर वे बातें ही हैं। भीतर-भीतर कुमारियां सभी बंधनों से छूटने की खिड़की ढूंढ़ती हैं। इस जमाने ने ऐसी अनेक खिड़कियों की व्यवस्था भी कर ही दी है। परंतु उनकी बात जाने दें। मैं तो तुझसे इतना पूछती हूं कि तू स्वतंत्र होने की जो बात किया करती है उसमें केवल स्वार्थ नहीं? मुझे तो लगता है कि क्या पुरुष और क्या स्त्री, जो विवाह की जिम्मेदारी से बचता है वह अधूरा रहता है। वह खुला रहकर घूमता है। उसे न संसार से कुछ लेना-देना और न सेवा से। 'सेवा, सेवा' कहकर वह मन को भले ही बहला ले; उसने तो सेवा को स्वेच्छाचार बना लिया है। फिर इन कुंआरों का मिजाज! घड़ी-घड़ी में उनको गुस्सा आता है। उनमें उदारता का नाम नहीं होता। बैठे-बैठे मुक्ति की बात करेंगे। मुक्ति कोई इस तरह संसार से आधे हटकर बैठने से नहीं मिलती।

वे दो भिखारी बहनें सुंदर भजन गाती हैं। देख, उनसे एक भजन गवाऊं तो तेरा तपा हुआ दिमाग जरा शांत हो।'

राधा : 'तपा हुआ दिमाग मेरा या तेरा? यह तो कोई सुनता हो तो कहे। वैसे, भजनवालियों को बुला ले। मुझे एकतारा बहुत पसंद है।'

लक्ष्मी : (भजनवालियों की तरफ देखकर) 'आओ, बहनो आओ।'

(दो भजनवालियां और उनके साथ दो-दो लड़कियां आती हैं।)

पहली भिखारिन : 'भगवान् तुम्हारा भला करे बहन! तुम्हारे जैसों के बिना हमारे भजन कौन सुने?'

दूसरी भिखारिन : 'बोलो। जेहळ तोणल गायें?'

पहली भिखारिन : 'नहीं, नहीं। कछुए-कछुई का भजन बहुत सुंदर है।...'

लक्ष्मी : 'ये सब तो तुम्हें पसंद हैं। आज तो तुमने उस दिन 'निश्चय करो राम का नाम' वाला जो भजन गाया था, वही गाओ। उसके सुर अभी तक मेरे कानों में से निकलते ही नहीं।'

दोनों भिखारिनें : (एक दूसरे की ओर देखकर) 'यह कौन सा?'

राधा : 'ठहरो, मैं याद कर लूं। कुछ तराजू और जोगी की बात आती थी। हां, हां। 'एक तराजू सब संसारी दूजे जोगी लाओ!'

पहली भिखारिन : 'एक तूरा सब संसारी दूजे जोगी लाओ!' यही न?'

राधा : 'हां, हां। यही।'

(भिखारिनें और लड़कियां भजन गाती हैं।)

राम-नाम का निश्चय करो जोगी बनकर न जाओ
न तो भगवा भेस करो न इकट्ठा करके खाओ
अच्छा लगे तो भगवा भेस करो,
चाहे तो उजले रखो
दूसरे जीव को दुःख न दो दूसरे का सुख देखो
एक तराजू सब संसारी दूजे जोगी लाओ
किस जोगी को राम मिले ऐसा एक तो बताओ

महेता, मीरां और प्रह्लाद, सेना नापित नाती
धनिया, पीपा, रैदास,
कुंभा गोरा कुंभर की जाति
बोडाणा जाति का राजपूत, गंगाबाई स्त्री थी
यदि दास बनकर रहे तो, गिरिधारी घर आ गये
रंका बंका सजन कसाई ने
राम को दिन-रात भजा
किस जोगी को राम मिले,
ऐसा एक तो बताओ। *आदि-आदि*

लक्ष्मी : 'बहुत अच्छा गाया है।'

राधा : 'अरे धीरू...।'

धीरू : (पर्दे के पीछे) 'हां।'

राधा : 'अरे, इन्हें देने के लिए खिचड़ी के चावल दे।'

(धीरू खिचड़ी लाकर राधा को देता है। राधा भिखारिनों की लड़की की टोकरी में डालती है।)

पहली भिखारिन : 'हे बहनो! हमारी तरफ की बुढ़ियां तो चरखा चलायें सो ठीक, मगर तुम्हारी जैसी भाग्यशाली किसलिए चलाये?'

लक्ष्मी : 'बहन, तुममें-हममें फर्क नहीं। हम भी कातें, तुम भी कातो। इतना अच्छा बजाना जानती हो तो कातना जानने में क्या देर लगे? सहज ही आ जायेगा।'

दूसरी भिखारिन : 'आ तो जाय, परंतु एकतारे से तो, भाई साहब, दिन की आधी मजदूरी मिल जाती है; इसमें क्या मिले?'

राधा : 'इसमें भी मिलता है। भीख मांगकर आठ आने मिलें और मेहनत करके चार आने मिलें तो तुम्हें अच्छा न लगे?'

पहली भिखारिन : 'क्यों न लगे बहन? अच्छा तो लगे, पर एकतारे में भी मेहनत तो है ही। और साथ-साथ राम का नाम भी लिया जाता है।'

लक्ष्मी : 'हम भी तुम्हें एकतारा देंगी। हमारा इकतारा बजता है, राम-नाम लिया जाता है और उजली दूध जैसी रूई पड़ती जाती है। उससे कपड़े बनते हैं और एकतारा तुम्हें आठ आने - रुपया तक दिला देगा।'

राधा : 'कल आओगी? मेरे भाई तुम्हें चरखा दिलायेंगे, हमारा एकतारा भी दिलायेंगे और खाने को देंगे। तुम्हारा भीख मांगने का झमेला दूर होगा।'

दूसरी भिखारिन : 'भाई साहब, हमारे घरवालों से पूछे बिना ऐसे कहा जा सकता है?'

राधा-लक्ष्मी : 'अच्छा, अच्छा। जाओ। आना।'

राधा : 'देखा कैसा जुल्म है? भीख मांगना भी घर वाले से पूछे बिना नहीं छोड़ा जा सकता। मर्द के बिना एक कदम भी आगे नहीं रखा जा सकता। तोबाह, प्रभु, तोबाह!'

लक्ष्मी : तुझे जो जुल्म लगता है, क्योंकि तेरे सिर पर तो भाई बैठे हैं। तुझे कौन-सी चिन्ता है? इस बेचारी के भरण-पोषण का भार मर्द पर ही है। तेरी तरह से स्वतंत्र होकर यह कहां जाय?'

राधा : 'मर्द पर भार किस बात का? भीख तो बेचारी यह मांगती है। वह तो बैठा खाता होगा।'

लक्ष्मी : 'तू देखने गयी होगी? तेरे आगे पुरुषमात्र की कमबख्ती है।'

राधा : 'तुझे अभी अनुभव होने वाला है। होगा तब तू मुझे याद करेगी। किसलिए किसी की गुलामी की जाय? एक पेट का खड्डा भरने को? हमारे वहां की वे जुलाहा विधवाएं पुरुषों से भी अधिक कमाती हैं। मगर तुझे तो गृहस्थी बनना है, इसलिए तू ेरी सीख काहे को मानने लगी? *'एक तराजू सब संसारी, दूजे जोगी लाओ'*, यह भजन तूने क्यों गवाया, यह मैं समझती हूं। हो! इसमें कही गयी बात से कौन इनकार करता है? मैं जिस सेवा की बात कर चुकी हूं, वैसी सेवा करने वालों में यह जोगी नहीं आता। इसमें तो तिलक-छापे लगाने वाले और राख लपेटने वाले बगुला भगतों की निन्दा है। वैसे गृहस्थी में अच्छी तरह रहकर सेवा करने की बात करती हो सो झूठ बोलती हो।

गृहस्थी में मजे से रहने का अर्थ भरण-पोषण के लिए किसी पर निर्भर होना और इसके लिए उसका ताबेदार रहना और मेहनत-मजदूरी करके वैसा जन्म बिताना। इस अनुभव के बिना हमारा काम चलता रहा।'

लक्ष्मी : 'इस अनुभव के बिना तुम्हारी सेवा की कोई कीमत नहीं रहेगी। तुम दूसरे के दुःख को क्या समझो? दूसरे के दुःख में किस प्रकार भाग लोगी?'

राधा : 'तेरे गृहस्थी दूसरों के दुःख में कितना भाग लेते हैं, यह मैं जानती हूं। उस सुभद्रा बहन को जानती हो? उसे अपने बच्चे-कच्चों से ही सुबह से रात तक फुर्सत नहीं मिलती तो वह दूसरों का विचार क्या करेगी?'

लक्ष्मी : 'विचार करे या न करे, यह उसके दयाभाव पर आधारित है। वही दूसरे का दुःख समझ सकती है, यह मैं निश्चित मानती हूं। जो मां हो या बाप हो, वही दूसरे मां-बाप का दुःख समझे। कुंआरे क्या समझें? कुंआरे दूसरों के बच्चों को कभी अपना बना सकते हैं? यशोदामाता मां थीं तो श्रीकृष्ण की भी मां बन सकीं।'

राधा : (हंसकर) 'वाह! कुंआरे भी पराये बच्चों को अपना जरूर मान सकते हैं। तू अपनी ही बात ले न। तू बचुबहन के लड़के को प्रेम से खेलाती है, नहलाती-धुलाती है, बाल संवारती है, बीमार होता है तब जागरण करने में भाग लेती है। यह तू कुंआरी होने पर करती है। किन्तु मैं भूल गयी, तू तो भविष्य की माता है न?'

लक्ष्मी : (चिढ़कर) 'प्रत्येक स्त्री भविष्य की माता है।'

राधा : 'चिढ़ती किसलिए है? तू कहती है सो सही। जन्मभर कुंआरी रहकर भी माता के गुण पैदा किये जा सकते हैं। स्त्री का अर्थ ही माता है। दूसरों के दुःख समझने के लिए माता बनना तो ऐसा है, जैसे किसी को घाव लगा हो, तो उसकी सेवा करने से पहले अपने शरीर पर घाव लगाकर देखा जाय।'

लक्ष्मी : 'यह अनुभव तुझी को मुबारक हो। इस अनुभव के चक्कर में जो पड़ेंगे वे निकल नहीं पायेंगे। जितने अलग रहे उतने अच्छे। चीनी का स्वाद चखें तो फिर चरखने की जी करे। जो न चखे उसे क्या? इन बाल-विधवाओं की बापू बात करते हैं। मुझे उनसे कहने को जी चाहता है कि जिन विधवाओं को गृहस्थ का लेप नहीं लगा, उन्हें किसलिए विवाह करने का प्रोत्साहन देते हैं? जिन्हें लेप लगा हो उन्हें भले ही दीजिए। पर

औरों का तो भगवान ने भला किया है, हम क्यों बुरा करने जायं?'

लक्ष्मी : 'विधवा बनाकर उनका भला किया! अरी मां! तू यह क्या कह रही है? तब तो सतियां भी किसलिए सती हुईं? उन्हें भी विधवा होने की मांग करनी चाहिए थी।'

राधा : 'उल्टा ले बैठी। जहां देखो वहीं सती! अरे, सावित्री एक हो गयी, सीता-दमयंत्री भी एक हो गयी। जनक राजा जैसे गृहस्थी भी एक हो गये। यह तू भूल जाती है।'

लक्ष्मी : 'इसमें तूने क्या नया कहा? गार्गी भी एक ही हो गयी न? अच्छे मनुष्यों के कोई झुंड फिरते होंगे? मेरी बात तो यह है कि तू जिस सेवा की बात करती है, वह भी अकेले नहीं हो सकती। स्त्री कैसी भी हो वह अपंग है, अनाथ है। वह सनाथ हो तभी उसकी सेवा संपूर्ण हो, सुशोभित हो। नाइटिंगल या हॉबहाउस का तो पता नहीं, परंतु श्रीमती बेसंट को ले लो। साध्वी, सती जरूर थीं, यह सब सही है। परंतु अपने जीवन के अलग-अलग समय में उन्होंने की ब्रॉडला, तो कभी रामस्वामी ऐयर तो कभी कोई और, इस प्रकार किसी न किसी का आश्रय ढूंढ़ा है। ऐसी दबंग स्त्री को भी अपनी अपंगता लगी होगी, तभी न? उनका गृहस्थ-जीवन सुखी होता और उन्हें पति से अलग न होना पड़ता, तो उनकी सेवा अधिक होती। जैसे श्री और श्रीमती वेब जोड़े से सेवा कर रहे हैं वैसे वे भी करतीं।'

राधा : 'खूब! अब तो तुझे भी इस जमाने के और पश्चिम के उदाहरण मिल गये। श्रीमती बेसंट ने अनेक भाइयों का आश्रय ढूंढ़ा, इसमें मैं कोई अड़चन नहीं देखती। ऐसे भाई तो सभी बहनों को मिलें। इन्हें ऐसे भाई मिल जाते हैं, यह भी इनके प्रभाव और ब्रह्मचर्य का प्रताप है। स्त्री, पुरुष अकेले सेवा कर सकने का अभिमान रखें तो मिथ्या है। परंतु दोनों भाई-बहन रहकर अवश्य सेवा कर सकते हैं—पति-पत्नी बनने की कोई जरूरत नहीं। सिडनी वेब और उनकी स्त्री को विवाहित जीवन बिताने की कितनी फुर्सत मिलती है, यह पूछना चाहिए। इन्होंने सेवा को धर्म के रूप में स्वीकार किया है। जिसने अपने चौबीसों घंटे अपने करोड़ों नंगे, भूखे, गरीब भाई-बहनों के विचार के लिए ही दिये हैं, ऐसे आदर्श वाली स्त्री भूले-भटके भी विवाह कर ले, तो वह या तो सेवा में शामिल न होने वाले पति को नमस्कार कर ले या सेवा में भाग लेने वाले पति को गृहस्थ आश्रमपरायण बनाने की बजाय सेवापरायण बनाये। सेवापरायण पुरुष की भी यही दशा समझी जाय।'

लक्ष्मी : 'तब सेवापरायण पति...'

राधा : 'अरे, जरा धीरज तो रख। स्त्री या पुरुष, दोनों के लिए इस प्रकार सेवा-परायण रहना और पति-पत्नी बनने का लाभ उठाना आसान नहीं। इसीलिए सेवक-सेविकाओं के संघ बनाये गये हैं। मैं तो जो स्त्री-पुरुष दोनों अपने को सेवा के लिए अर्पण कर चुके हों, उन्हें इस बंधन से मुक्त ही रखना चाहूंगी। पश्चिम के समाज में आज भी कोई दम रह गया हो, सीधे खड़े रहने की कोई शक्ति रह गयी हो तो ऐसे सेवापरायण स्त्री-पुरुषों को ही उसका श्रेय है, जो उस संसार की पीठ में रीढ़ के समान मौजूद हैं। हमारे यहां ब्रह्मचारियों के दल के साथ ब्रह्मचारिणियों के दल बनाने की भी पक्की प्रथा पड़ी होती, तो आज हम अपना संसार जिस छिन्न-भिन्न दशा में देखते हैं, वह न देखते।'

लक्ष्मी : 'बहन, तेरे भाषण से तो अब मैं थक गयी। तेरा यह नया समाज कैसा बनता है, यह तो देखना होगा, परंतु आज मुझे कोई बड़ी आशा नहीं होती। तू चित्रकला सीख रही है, बड़े-बड़े चित्र बनाती है, ईसा और उसकी माता के चित्र का तेरा सुंदर अनुकरण और शकुंतला और भरत का तेरा चित्र! वे तो उड़कर आंखों में समा जाने वाले हैं। फिर तू प्रभात में उठकर अपनी सितार के तार मिलाती है और अनेक राग-रागिनियां निकालती है, ये सब उस नयी समाज-रचना के चोचले नहीं हो सकते, बहन! ये तो किसी सौभाग्यशाली का घर सुशोभित करने के चिह्न लगते हैं।'

राधा : 'ये तो तेरे दिल के उद्‌गार तेरे होंठों पर आते हैं। इन दोनों कलाओं का सेवन जैसा तू कहती है वैसे संकुचित भाव से ही होता हो, तो मैं ईश्वर से मांगूंगी कि ये कलाएं मुझे कभी न सधें। मुझे तो यह कला ईश्वर के ही अर्पण करनी है। तुलसीदास या सूरदास ने क्या किसी को रिझाने के लिए भजन रचे थे? सूरदास क्या कोई कमाई करने को सैकड़ों और हजारों को अपने भक्तिरस में तल्लीन करते थे? फिर पश्चिम का उदाहरण देकर कहूं तो वॉट्स जैसे चित्रकार ने क्या अपनी चित्रकला की साधना किसी के अनुरंजनार्थ की थी? उन्होंने तो अपना एक चित्र भी न बेचकर अपना सारा कला-भंडार देश के चरणों में धर दिया।'

लक्ष्मी : 'अब तू फिर गरम होने लगी! परंतु इस तरह गरम होने से काम नहीं चलेगा। माना कि तेरी साधना प्रभु-प्रीत्यर्थ है। पर देखना हो! उमा की सारी साधना, सारी तपश्चर्या प्रभु-प्रीत्यर्थ ही तो थी!'

राधा : 'मैं यह भी तुझे समझाने को तैयार हूं, परंतु...'

मणिबहन : (स्वागत) 'अब ये लड़ेंगी।'

(उनकी तरफ जाती हैं।)

राधा और लक्ष्मी : 'ओहो, बड़ी बहन चोरी से सब सुन रही थीं क्या?'

मणिबहन : 'कोई सुने या न सुने, इसकी तुम्हें परवाह क्या है?' *(लक्ष्मी की ओर मुड़कर)* 'शादी करने में क्या दुःख है, इसका तुझे पता नहीं', *(राधा की ओर मुड़कर)* 'अथवा कुंआरी रहने में कितने परेशानी है इसका तुझे पता है? आज तुम दोनों छोटी हो। जीवन का उल्लास तुममें उभर रहा है, इसलिए इस भादों की साबरमती की भांति बड़ा शोर मचा रही हो। किन्तु देख लेना, कड़ी गरमियां आने पर दोनों सूखकर शांत हो जाओगी। फिर तुम्हारे उदाहरण और तुम्हारी बहस मन की मन में ही समा जाने वाली है।'

राधा और लक्ष्मी : 'उस समय ईश्वर को याद करेंगी। जैसा वह भिखारिन गा गयी, वैसे निश्चय ही राम-नाम जपेंगी। वह जैसा निश्चय करायेगा उसका पालन करने का बल भी देगा।'

मणिबहन : 'अच्छा, पालन करना, जरूर पालन करना।' (महादेव भाई की डायरी, खंड-10 से) ❑

'बा'

गांधी की दोस्ती

❑ गिरिराज किशोर

गांधीजी को लेकर एक बड़ा और चर्चित उपन्यास प्रस्तुत कर चुके श्री गिरिराज किशोर ने अब बा पर कलम उठायी है। बा पर कुछ भी लिखना बहुत कठिन था। नहीं के बराबर जानकारियां। 'पहला गिरमिटिया' की सामग्री जुटाने में उन्हें कोई दो हजार पुस्तकों से मदद मिली थी। और 'बा' उपन्यास लिखते समय मुश्किल से दो पुस्तकें सामने थीं। वे उन सब लोगों से मिले, जिन्हें कस्तूरबा के बारे में थोड़ी-सी भी जानकारी थी और उन जगहों पर गये, जहां बा ने थोड़ा या बहुत समय बिताया था। इस तरह बनी यह कथा, यह इतिहास बा के अलावा खुद बापू के दो और रूपों को भी सामने रखता है—पति और पिता का रूप। प्रस्तुत है 'बा' का एक अंश, जो बा-बापू : 150 के अवसर पर क्रमशः प्रकाशित हो रहे हैं। **–संपा.**

मोहनदास की भेंट एक जर्मन वास्तुकार हरमन कैलनबैक से हुई। वह स्वतंत्र सोच वाला एक सफल व्यक्ति था। बौद्ध-धर्म के अध्ययन के कारण उसकी रुचि शाकाहारी दर्शन में थी। उन दोनों में धीरे-धीरे इन मुद्दों पर खुलकर विमर्श होने लगा। कैलनबैक ने उन्हें एक अंग्रेज प्रॉपर्टी एजेंट लुइस डब्ल्यू रिच से मिलवाया। रिच जोहान्सबर्ग की थियोसोफिकल सोसायटी का संचालक भी था। रिच की सहायता से मोहनदास को वकीलों की रिसिक स्ट्रीट पर, पट्टे पर, दफ्तर मिल गया था जो अपने आप में एक आश्चर्य की बात थी। उनसे पहले किसी भारतीय को यह अवसर नहीं मिला था कि रिसिक स्ट्रीट पर अपना दफ्तर बनाये। मोहनदास ट्रांसवाल सुप्रीम कोर्ट में भी, बार काउंसिल के विरोध और आपत्तियों के बावजूद एडवोकेट के रूप में पंजीकृत हो चुके थे। वे सुप्रीमकोर्ट में पंजीकृत होने वाले पहले काले व्यक्ति थे। वहां पहुंचने के बाद मोहनदास ने एशियाटिक दफ्तर के असभ्य गोरे अधिकारियों को, कालों की गवाही पर जूरी के मना करने के बावजूद, हटवा दिया था। इस छोटी-सी घटना ने उन्हें यूरोपियन वकीलों के समकक्ष ला खड़ा किया था। प्रेक्टिस भी बढ़ गयी थी। डरबन में उनकी वकालत इतनी आमदनी वाली कभी नहीं रही थी। वे दुनिया को बदलने का सपना देख रहे थे। अपनी आध्यात्मिक समझ और बौद्धिक अध्ययन के बल पर अपने व्यवसायिक आधार का विस्तार कर रहे थे। वह उनके जीवन का रचनात्मक और निर्णायक काल था। ऐसा नहीं था कि मोहनदास अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियों के प्रति जागरूक नहीं थे। जन नेता बन जाने के कारण दक्षिण अफ्रीका में बसे देशवासियों की समस्याओं में डूबे रहने की वजह से स्वदेश लौटने का इरादा लगभग छोड़ चुके थे। यही कारण था कि उन्हें काफी समय तक कस्तूरबा और बच्चों को बुलाने के बारे में कुछ नहीं किया। महीनों दफ्तर के पिछले हिस्से में अकेले रहते रहे थे। मन के पास रहते हुए भी कस्तूरबा सात समन्दर पार थी। वहां कस्तूरबा के अंदर एक नई कस्तूरबा जन्म ले रही थी जो पति के समानान्तर दायित्वबोध और सहनशक्ति से भरी थी।

इस बीच जब उनका नेटाल जाना हुआ तो मदनजीत व्यवहारिक नाम के गुजराती व्यवसायी ने उनसे संपर्क किया। उसका वहां एक अपना प्रिंटिंग प्रेस था। उसने उन्हें समझाया कि दक्षिण अफ्रीका में एक साप्ताहिक समाचार-पत्र निकालकर वहां रह रहे भारतीय समुदाय से जुड़ा भी जा सकता है और उन्हें जाग्रत भी किया जा सकता है। मोहनदास ने उसकी बात को समझा और तैयार हो गये। सहमति देने के साथ उन्होंने यथासंभव आर्थिक सहायता देने का भी आश्वासन दिया। निकलने वाले नये समाचार-पत्र का नामकरण 'इंडियन ओपिनियन' कर दिया गया। पहला अंक निकलने की भी एक अलग व्यथा-कथा है। पहला अंक निकालने के लिए क्या-क्या पापड़ नहीं बेलने पड़े थे। 4 जून, 1903 को पूर्व निर्धारित दिन पर पहला अंक अंग्रेजी, हिन्दी, तमिल और गुजराती में निकला। बाद में पैसे की कमी और भारतीयों की जनसंख्या के अनुपात को देखते हुए हिन्दी और तमिल समाचार-पत्रों का प्रकाशन बंद करना पड़ा।

कस्तूरबा का दर्द

यह सही है कि मोहनदास की प्रेक्टिस

बम्बई और नेटाल से ट्रांसवाल में कई गुना अधिक थी। मकान भी बड़ा था। पर जब वे अकेले बैठकर सोचते थे, जिनके लिए यह घर है, वे तो हजारों मील दूर हैं, तो मन दुखता था। उनका क्या कसूर है? लेकिन मोहनदास के लिए इस समय स्वयं जाकर लाना संभव नहीं था। ट्रांसवाल में हर क्षण हालात बदल रहे थे। वे यह जानते थे कि कस्तूरबा, बच्चों की बा जरूर है, पर उसके लिए बच्चों को हजारों मील का समुद्री सफर तय करके यहां लाना अग्नि परीक्षा से कम नहीं होगा। इसलिए भी वे उनको बुलाना टालते रहे थे। जितना टाल रहे थे उतना ही मानसिक दबाव बढ़ रहा था। आखिर उन्होंने अपने एक साथी रेवाशंकर भाई को यह काम सौंपा कि वे कस्तूरबा के पास यह समाचार पहुंचायें कि सांताक्रूज का घर समेटकर और बच्चों को लेकर वह जल्दी से जल्दी ट्रांसवाल पहुंच जाये। इतना बड़ा घर खाने को दौड़ता है। राजकोट में बड़े भैया को भी बता दें कि कस्तूर और बच्चे उनके बुलावे पर नेटाल जा रहे हैं।

मोहनदास का संदेश मिला तो कस्तूरबा आग बबूला हो गयी, 'हमें कहीं नहीं जाना, आखिर समझ क्या रखा है, पहले ले जाकर डरबन पटक दिया था। अब हुक्मनामा आ गया कि बच्चों को लेकर चले आओ। किसके बूते पर? उनके बूते पर जिनका मन स्वयं स्थिर नहीं। जब गये थे तब साथ ले जा सकते थे, पर नहीं। छोटे-छोटे बच्चों को लेकर इतनी दूर जाना क्या कोई खेल है?'

रेवाशंकर भाई ने कस्तूरबा को बहुत समझाया, 'ऐसा न करें, मोहन भाई ने बुलाया है, वह वहां अकेले हैं, आपकी जरूरत है। एक बार जहाज पर सवार हुए डरबन जाकर ही उतरेंगे। मोहन भाई ने आप लोगों का माकूल इंतजाम किया है।'

कस्तूरबा उस रात सो नहीं पायी। पता नहीं क्या हो, डूबें या बचें। पिछली बार तो सारे करम हो गये थे। पुलिस कप्तान की पत्नी आ गयी थी, नहीं तो...न होने से बचा क्या था, उन्हें कौन समझाए? दूसरों की मदद करो पर अपनी जान जोखिम में तो न डालो। उनके तर्क बेसिर पैर के होते हैं—मां बनने के लिए औरतें जान जोखम में डालती हैं या नहीं। उन्हें कोई समझा सकता है?

सबसे बड़ी सांसत थी कि हरि जाने को तैयार नहीं था। वह राजकोट में मोटा बापू के पास रहकर पढ़ना चाहता था।

उन्हें तो कुछ सोचना नहीं, उनके मुंह से जो निकल गया वह सही। मर्द जो ठहरे। हमें तो सोचना है। सीता माता की खोज में राम सात समंदर पार करके पहुंचे थे। अब सब उलट गया...

कस्तूरबा जब जहाज पर सवार हुई तो आंखें और मन भीगे थे। दिल बंटा था हरि छूटा जा रहा था। पौधों को भी बढ़ने के लिए बाढ़ का सहारा चाहिए। कच्ची उम्र के खतरों में आवाज नहीं होती। हरि कहीं छूट न जाये...!

कस्तूरबा डैक पर बैठी हरि के बारे में सोच रही थी। सोलह साल का हो गया। वह अपने बापू के साथ इन सोलह सालों में कितना रहा? उन दोनों का संपर्क दहाई छूने जैसा है। जब अपने बापू के पास रहकर कुछ सीखने का समय आया तो वह अपने मोटा बापू के साथ बस गया। पिछली बार जब दक्षिण अफ्रीका गया था तो पानी से कितना डरता था। चारों तरफ पानी ही पानी था। उसके बापू ने बार-बार डैक पर ले जाकर, पानी के प्रति उसके मन का डर निकाला था। अब तो यह छुटका देवदास भी डैक पर भागा फिरता है। पानी आकर्षित तो करता ही है, डराता भी है। तभी एक आदमी दौड़ा हुआ आया, 'आपके बच्चे को चोट लग गयी।'

कस्तूर बदहवास सी दौड़ पड़ी, 'हे भगवान, यह कैसी विपत्ति!' रामदास बुरी तरह रो रहा था। कई जहाजी भी आ गये थे। एक गोरे जहाजी ने उसे गोद में उठाया हुआ था। वह हाथ नहीं हिला पा रहा था। सूजन बढ़ती जा रही थी। गोरे ने ले जाकर उसे केबिन में लिटा दिया। वह गोरा जहाज का डॉक्टर था। उसने कहा, 'मिसेज गैंडी, चलते जहाज में बाहर से डॉक्टर नहीं बुलाया जा सकता। आप कहें तो मैं इसके हाथ को बांधकर इस लायक कर दूं कि वह डरबन पहुंच जाये।' इसके अलावा कोई दूसरा तरीका नहीं था। कस्तूरबा ने सहमति दे दी। उसने लकड़ी की खपच्ची मंगवाई, हाथ बांधकर गले में लटका दिया। उसे आराम तो मिला पर बेचैनी बहुत थी। कस्तूर को हर सांस मोहनदास की याद आ रही थी। अपने आप वहां बैठे हैं, यहां मेरा बच्चा दर्द से बेहाल है। याद से ज्यादा, गुस्सा था। उन्हें लोगों की वाहवाही चाहिए। न पत्नी की जरूरत और न बच्चों की। हम ही पागल हैं, बच्चों को लादी लादकर समुद्र की लहरें नाप रहे हैं। मर्द मर्द होता है, उसे अपना काम प्यारा। वह रात-भर रामदास को गोद में लिये बैठी रही। अकेले में जहाज की आवाज ऐसी लगती थी जैसे प्रलय आ रही हो और किनारे टूट-टूटकर बह रहे हों।

डलागोवा पोर्ट पर उतरे। साथ में एक सहयात्री वासुदेव भाई थे। वे गुजराती थे और मोहनदास से परिचित थे। सब फर्स्ट क्लास का टिकट खरीदकर रेलगाड़ी में बैठ गये। मणिलाल खिड़की के पास बैठने की जिद करने लगा। कस्तूरबा और वासुदेव भाई ने बहुत समझाया पर वह वहां बैठने के लिए बजिद था। एकाएक खिड़की का शीशा गिरा और उसका अंगूठा लहू-लुहान हो गया। वहां तो डॉक्टर होने का सवाल ही नहीं था। वासुदेव भाई ने कपड़ा गीला करके बांध दिया। कस्तूर रामदास की चोट तो सहन कर गयी थी पर मणिलाल की चोट ने अंदर तक हिला दिया। रामदास की चोट से रक्त नहीं बहा था इसलिए वह दर्द बा के लिए सहनीय था, पर मणि के अंगूठे से बहता खून उसके अपने शरीर से बहता महसूस हो रहा था। लग रहा था जैसे उस पर दर्द का पहाड़ ही टूट पड़ा हो। न मन की पीड़ा थम रही थी, न खुलकर रोने दे रही थी। एक बच्चा देश में छूट गया था दो यहां घायल थे।

....क्रमशः अगले अंक में

30 जनवरी : शहादत दिवस

हे राम!

❑ **मनुबहन गांधी**

गांधीजी के अंतिम सात दिन!

नियमानुसार बापू प्रार्थना के लिए जगे, मुझे भी जगाया।...बहन उठी नहीं। आजकल सुशीला बहन नहीं हैं, इसलिए गीता-पाठ मुझे ही करना पड़ता है। भाई साहब और प्यारेलालजी जागते रहते हैं, तो वे आवाज में आवाज ही मिलाते हैं।...तो गीता के श्लोक बोल ही नहीं पाते।...उठे नहीं, इसलिए बापू ने दातुन करते हुए आज भी एक बात कही : ''मैं देख रहा हूँ कि मेरा प्रभाव मेरे निकट रहने वालों पर से भी उठता जा रहा है। प्रार्थना तो आत्मा को साफ करने की झाड़ू है। मैं प्रार्थना में अटल श्रद्धा रखता हूँ। ऐसी प्रार्थना करना...जैसी को पसन्द नहीं पड़ता, तो फिर उसे चाहिए कि मेरा त्याग ही कर दे। इसी में दोनों का भला है। यदि तुझमें इतनी हिम्मत हो, तो मेरी ओर से उसे यह कह देना। समझा देना कि ये सब बातें मुझे अच्छी नहीं लगतीं। यह सब देखने के लिए भगवान अब मुझे अधिक न रखे, यही चाहता हूँ। आज मैं तुझसे यह भजन सुनना चाहता हूँ :—

'थाके न थाके छतांय हो,
मानवी न लेजे विसामो।'

आश्चर्य की बात है कि आज पहली बार बापू ने यह भजन पसन्द किया! मुझे खुद को बापू के बारे में कुछ विलक्षण-सा ही लग रहा है। कभी-कभी यह भी आशंका होने लगती है कि कदाचित् ये पुनः अनशन तो नहीं करने जा रहे हैं? आज दोपहर को सरदार दादा विशेष रूप से मिलने के लिए आने वाले हैं। वे और बापू एकान्त में बातचीत करेंगे। उसके बाद कल-परसों मंत्रिमण्डल की बैठक बुलाकर सारा निर्णय किया जाएगा। देखें, ईश्वर इसे कहाँ तक सफल करता है? कल सुबह भाई भी आ रहे हैं।

प्रार्थना के बाद मैं बापू को बरामदे से भीतर ले आयी। उन्हें कपड़ा ओढ़ाया। बापू कल रात तैयार किये हुए कांग्रेस-संविधान के मसविदे का संशोधन करने बैठ गये। नियमानुसार पौने 5 बजे गरम जल, शहद और नीबू और पौने 6 बजे सन्तरे का रस 16 औंस लिया। अभी उपवास की कमजोरी तो है ही। लिखते-लिखते थक जाने से बापू बीच ही में सो गये और मैंने उनके पैर भी दबाये।

पू. किशोरलाल भाई को कल जो पत्र लिखा था, नकल न हो सकने के कारण वह बापू के कागजों में ही पड़ा रह गया। बापू को यह अच्छा नहीं लगा। मैंने सहज ही पूछा कि ''इसमें एक पंक्ति यह लिख दूँ कि हम लोग दूसरी को वर्धा जानेवाले हैं?'', तो बापू ने कहाः ''कल की कौन जानता है? अगर जाना तय ही हो जाएगा, तो आज प्रार्थना में कह दूँगा। फिर रात में रेकार्ड रिले होगा, तो उसमें वह आ ही जाएगा। फिर भी इस तरह चिट्ठी पड़ी रहनी नहीं चाहिए थी। भले ही यह काम बिसेन का हो, लेकिन तू मेरे किसी भी काम से मुक्त नहीं हो सकती। दूसरों की गलती होने पर भी मैं उसे तेरी ही गलती मानता हूँ, अगर तू उसे स्वीकार करे।'' मैंने कहा : ''मुझे तो स्वीकार करना ही होगा।'' बापू प्रसन्न हो गये।

टहलते समय श्रीमती राजेन नेहरू आयीं। मैं घूमने के लिए जानेवाली नहीं थी, पर मुझे जबर्दस्ती चलने के लिए कहा।

आठ बजे नियमानुसार मालिश और स्नान हुआ। मालिश के समय अखबार देखे। बंगाली पाठ किया। फिर मालिश के कमरे से बाथ रूम में लाया गया। उस समय उन्होंने प्यारेलालजी से कहा : ''कल रात मैंने कांग्रेस का मसविदा (संविधान) 'हरिजन' में भेजने के लिए बना रखा है। उसे ठीक से देख लें और विचारों की जो कमी रह गयी हो, उसे पूरी कर दें। बहुत ही थके-माँदे मैंने उसे तैयार किया है।''

नियमानुसार मैं बापू को बाथ देती रही। मुझसे कहने लगे कि ''तू हाथ की कसरत करती है या नहीं?'' मैंने 'ना' कहा। इस पर कहने लगे : ''यह तो मुझे जरा भी पसन्द नहीं।'' मैंने कहा : ''फिर तो करना ही होगा।'' बापू ने कहा : ''अवश्य! तेरा वजन नहीं बढ़ता और तबीयत नहीं सुधरती, इससे मुझे बहुत ही दुःख होता है। जब तू अपने बाप के यहाँ से नोआखाली आयी, तो कितनी तन्दुरुस्त थी! तेरा शरीर नहीं सुधरता, इसका कारण तेरा भावुक और संवेदनशील स्वभाव ही है। कभी किसी के दुःख से अधिक दुःखी या किसी के सुख से अधिक प्रसन्न न होना चाहिए। दोनों में सन्तुलित स्वभाव रखने पर ही भगवान का सान्निध्य पाना आसान होता है। यह कानून मेरा नहीं, अनादिकाल से चला आ रहा है और सभी धर्म-ग्रन्थों में लिखा है। स्थितप्रज्ञ होने के उपायों में इसे भी एक माना गया है। तू 18 वर्ष की उभरती छोकरी है। मैंने तेरा मन कितना गढ़ा है, इसका खयाल तुझे आज नहीं हो सकता। नोआखाली से लेकर आज तक मैंने तुझे खूब तपाया है और तरह-तरह के विलक्षण अनुभवों से गढ़ा है। भले ही आज तुझे इसका मूल्य न मालूम पड़े, लेकिन मेरे ये शब्द लिख रखना कि तेरे भावी जीवन के लिए यह बहुत ही उपयोगी सिद्ध होगा, कदाचित् मैं जिन्दा रहूँ या न रहूँ।

''तू जानती ही है कि...आज सुबह प्रार्थना के समय नहीं उठी। इसलिए मैं सोच रहा हूँ कि आखिर मुझमें कहाँ खामी है?

दूसरी लड़कियाँ या और कोई इस यज्ञ में मेरा साझीदार नहीं। अकेली तू ही मेरी सेवा और मेरे कामों की जिम्मेदारी उठा रही है। इसमें तनिक भी भूल नहीं होने देती। लेकिन अपनी तबीयत सँभाल रखना भी मेरी सेवा का एक अंग है। अतः यह जिम्मेदारी भी तुझे अदा करनी ही चाहिए।''—बाथ के समय बापू ने बड़े ही प्रेम से ये बातें कहीं और मेरी पीठ सहलायी।

बाथ से निकलने के बाद वजन किया गया—साढ़े 109 पौण्ड हुआ। भोजन में उबाला हुआ शाक, बारह औंस दूध, एक-आध मूली और करीब चार-पाँच पके टमाटर और चार सन्तरों का रस लिया। खाते समय प्यारेलालजी के साथ नोआखाली के विषय में बातें हुईं। उन्होंने आबादी की अदला-बदली के बारे में बापू से पूछा, जिस पर बापू ने साफ-साफ कह दिया :

''हम लोगों ने तो 'करेंगे या मरेंगे' यह मंत्र लेकर ही नोआखाली का वरण किया है। भले ही आज मैं यहाँ बैठा हुआ हूँ, पर काम तो नोआखाली का ही चल रहा है। हमें जनता को भी इसके लिए तैयार करना चाहिए कि वह अपनी इज्जत और सम्मान बनाये रखने के लिए बहादुरी के साथ वहीं रहे। भले ही अन्ततः वहाँ गिने-गिनाये लोग ही रह जाएँ, लेकिन जहाँ दुर्बलता से ही सामर्थ्य पैदा करनी हो, वहाँ दूसरा उपाय ही क्या है? आखिर सशस्त्र युद्ध में भी साधारण सिपाहियों का सफाया होता ही है। फिर अहिंसक युद्ध में उससे भिन्न और हो ही क्या सकता है?''—और उन्हें नोआखाली जाने का ही सुझाव दिया।

फिर पैरों में घी मलवाते हुए बापू ने थोड़ा आराम किया। थोड़ी देर सोकर पुनः उठे और बाथरूम में जाने के लिए बाहर के पटरे पर से आ रहे थे। मैंने कहा : ''बापू! अकेले ही अकेले आ रहे हैं, तो कैसे लग रहे हैं?'' (कमजोरी के कारण इधर वे बिना किसी का सहारा लिये चलते नहीं थे) बापू ने कहा : ''क्यों, अच्छा दीखता है न? 'एकला चलो'!''

साढ़े 12 बजे 'डॉ. भार्गव को नर्सिंग होम बनाने के लिए एक मकान चाहिए', यतीमखाने की बात कही गयी। बापू ने कहा कि ''जब स्थानीय मुसलमान यहाँ आते हैं, तब मुझे इसके लिए याद दिलाएँ।'' उन्होंने यह भी कहा कि ''हुकूमत मुझसे डर-डरकर कब तक चलेगी? मेरे डर से नहीं, बल्कि अपने मन से करना चाहिए। जब नियोगी यहाँ आयें, तो पूछ देखें।'' बापू के पास मुसलमान लोग आये, तो उन्हें याद दिलायी गयी। लेकिन उन्होंने कहा कि ''अभी उसे न दिया जाए, तो अच्छा है।'' बापू ने कहा : ''अच्छा, मैंने तो वैसे ही पूछ लिया। इसके पीछे हमें वक्त देने की जरूरत ही क्या है?''

उसके बाद मौलाना रहमान ने सेवाग्राम के बारे में पूछते हुए कहा कि ''आप वहाँ जा सकते हैं, पर 14 को वापस लौट ही आएँ।'' बापू ने कहा : ''हाँ, चौदह को तो मैं यहीं रहूँगा। फिर वह सब तो खुदा के हाथ में है। वह तो आसमानी सुलतानी बात है।''

महादेव भाई की जीवनी लिखने का—डायरी-संपादन करने का काम व्यवस्थित होने जा रहा था। उस बारे में शान्तिकुमार भाई के साथ बातें कीं। शान्तिकुमार भाई की शिकायत थी कि ''चन्द्रशंकर भाई और नवजीवन के बीच झगड़ा चल रहा है। अधिक पैसा लेने की बात है।''

बापू ने कहा : ''जहाँ देखता हूँ, वहीं जैसे यादव आपस में कट मरे, वही स्थिति हमारी है। हम लोग आपस में झगड़ा कर समाज की कितनी हानि कर रहे हैं, इसका खयाल किसी को भी नहीं आता। इसमें आप या और कोई कर ही क्या सकता है? इन सबमें मेरी ही खामी है। ईश्वर ने ही मुझे अन्धा बना दिया हो, तो कोई क्या कर सकता है? फिर भी अपने जीते जी यह सब अपनी आँखों देखकर जितना सुधार सकूँ, उतना सुधार लूँगा, जिससे भावी पीढ़ी की गाली न खानी पड़े; इतना ही भगवान का आभार मानिये।

''यह काम मुझे ही करना चाहिए। डायरी को अच्छी तरह ग्रन्थरूप में बनाना ही होगा। नरहरि की तबीयत साथ नहीं देती और अब?...इसने तो मेरे सभी कामों से छुट्टी पा ली है। लेकिन वह बिना समझे-बूझे ली है, यह कैसे कहा जा सकता है? क्योंकि सभी अपने-अपने विचार के लिए स्वतन्त्र हैं। यदि चन्द्रशंकर यह बोझ उठाता है, तो वह अपनी कमाई खर्च करेगा। इन दोनों के अक्षरों में कितना साम्य है? मैं उसे लिखूँगा।''

डॉ. सिल्वा और उसकी लड़की लंका में मुख्य प्रतिनिधि थे। उन्हें अपना आटोग्राफ दिया।

दोपहर में बिसेन भाई के साथ चिट्ठियों का रुका हुआ काम पूरा करने के लिए कहा। 2 बजे मिट्टी ली। पैर दबाये। बापू ने मिट्टी उतारी। हम लोग बापू से छुट्टी लेकर शहर में एक सम्बन्धी के यहाँ मिलने गये। वहाँ से सवा 4 बजे लौटे।

यदि जीवित रहा तो... : बापू और सरदार दादा बातचीत कर रहे थे।... काठियावाड़ के बारे में भी चर्चा हुई। इसी बीच काठियावाड़ के नेता रसिक भाई पारीख और ढेबर भाई भी आ गये। उन्हें बापू से मिलना था। लेकिन आज तो एक क्षण खाली नहीं है। फिर भी मैंने उनसे कहा कि ''बापू से पूछकर समय तय किये देती हूँ।'' बापू और सरदार दादा बातों में एकदम तल्लीन थे। मैंने पूछा तो कहने लगे : ''उनसे कहो कि यदि जिन्दा रहा, तो प्रार्थना के बाद टहलते समय बातें कर लेंगे।'' मैंने उनसे प्रार्थना के लिए रुक जाने को कहा। कारण यदि वे प्रार्थना के बाद तत्काल न मिल लेंगे, तो और कोई घुस ही जाएगा और फिर बातें न कर पाएँगे। वे रुक गये और बापू के कमरे में जा बैठे।

इसके बाद की डायरी मैं पहली फरवरी की रात में दो बजे लिख रही हूँ। क्या लिखूँ। समझ में ही नहीं आता! पूरे बिरला-भवन में रोने के सिवा कुछ भी नहीं है। अरे! क्या बापू सोये हुए तो नहीं हैं? मुझे इतनी देर तक लिखती देख उलाहना देने के लिए उठकर तो नहीं आएँगे? नहीं, नहीं, बापू! आप मेरी

भूल क्षणभर भी क्षमा नहीं करते थे और आज इतने उदार हो गये? हाय, मुझ पर गजब ढा गया! मुझसे कहते थे : "इस यज्ञ में तू और मैं दो ही हैं। तू मुझे छोड़ सकती है, पर मैं तुझे नहीं छोड़ सकता।" लेकिन आज तो बापू! आप ही मुझे छोड़ गये! भाई कल आने वाले हैं। क्या मुझे सौंप देने के लिए ही तो चार दिन पहले उनको चिट्ठी नहीं लिखी? कुछ भी नहीं सूझता!...पंडितजी का यह बुक्का फाड़-फाड़कर रोना अच्छे-अच्छे धीर-गम्भीर लोगों का भी हृदय विदीर्ण कर देता है। नन्हा गोपू कह रहा है : "मनु बहन! दादा क्यों सोये हैं?"....

थाके न थाके छताये हो! : ...बापू सरदार दादा के साथ बातचीत में इतने तन्मय हो गये थे कि दस मिनट देर हो गयी। इस गम्भीर वातावरण में उन्हें विक्षेप करने की किसी को भी हिम्मत नहीं हुई। आखिर मणि बहन ने हिम्मत की ही, क्योंकि यह सभी जानते थे कि यदि बापू को समय का ध्यान न कराया जाए, तो बाद में हम लोगों पर नाराज हो जाएँगे। बातें करते हुए ही बापू ने भोजन भी कर लिया। भोजन में चौदह औंस बकरी का दूध, चार औंस शाक का रस और तीन सन्तरे थे। बातें करते हुए उन्होंने कताई भी कर ली। बिना यज्ञ किये खाना चोरी का खाना माना जाता है। अतः वे बिना कताई किये रह ही कैसे सकते हैं? आज ब्राह्म मुहूर्त में कभी न कहलवाया हुआ यह भजन कि 'थाके न थाके छताये हो, मानवी न लेजे विसामों' मुझसे गवाया। क्या बापू उसे साकार करना चाहते रहे हैं? चाहे जो हो, पलभर भी विश्राम लिये बगैर अपनी ज्वलंत प्रवृत्ति का वेग और भी बढ़ा दिया। वे एकदम उठ खड़े हुए।

नर्सों का धर्म : मैंने अपने हाथ में रोज की तरह कलम, बापू की माला, पीकदानी, चश्मे का केस और जिस पर प्रवचन लिखती हूँ, वह नोटबुक ले ली। दस मिनट देर हो जाने के लिए बापू ने रास्ते में नापसन्दगी जाहिर की : "आप लोग ही तो मेरी घड़ी हैं न? फिर मैं घड़ी के लिए क्यों रुका रहूँ?" खासकर आजकल बापू घड़ी देखते ही नहीं। समयानुसार एक के बाद एक सारा काम यों ही कर लिया करते हैं। घड़ी को चाबी भी हम लोगों में से ही कोई दे दिया करता था। इसीलिए उन्होंने यह कहा। मैंने कहा कि "बापू! आपकी घड़ी बेचारी उपेक्षा से दुबली होती होगी।" इसी के उत्तर में उन्होंने यह बात कही। विनोद तो किया ही, पर साथ ही यह भी कहा कि "मुझे ऐसी देरी बिलकुल पसन्द नहीं।"

चाँद बहन को दिल्ली में ही रखने की बात कही। "अभी खुराक की मात्रा थोड़ी-सी ही बढ़ायी है।" यद्यपि अनशन के बाद अनाज तो अभी शुरू करना ही नहीं है, "पर अब प्रवाही (तरल खाद्य) कम करना है" ये बातें करते हुए प्रार्थना-स्थल की सीढ़ियाँ चढ़े। कहने लगे : "प्रार्थना में दस मिनट देर हो गयी, इसमें आप लोगों का ही दोष है।" सरदार दादा दो-चार दिनों बाद आये थे और ऐसे गम्भीर प्रश्नों पर चर्चा कर रहे थे कि टोकने की हिम्मत ही नहीं हुई, यह भी बापू को पसन्द नहीं पड़ा। उन्होंने कहा : "नर्सों का तो धर्म है कि साक्षात ईश्वर भी बैठा हो, तो भी वे अपना धर्म, अपना कर्तव्य पूरा करें। किसी रोगी को दवा पिलाने का समय हो गया हो और किसी भी कारण यह विचार करते रहें कि उसके पास कैसे जाया जाए, तो रोगी मर ही जाएगा। यह भी ऐसी ही बात है। प्रार्थना में एक मिनट की देर भी मुझे खल जाती है।"

यह नियम-सा बन गया था कि प्रार्थना में जाते समय हम लोग ही बापू की लाठी का काम करती थीं। कभी हम लोग नाराज हो जाएँ और इस नियम के अनुसार लाठी बनना न चाहें, तो बापू हम लोगों को जबरदस्ती पकड़कर लाठी बना लेते थे। लौटते समय दूसरी लड़कियाँ रहती थीं।

हे राम! : बापू चार सीढ़ियाँ चढ़े और सामने देख नियमानुसार हम लोगों के कन्धे पर से अपने हाथ उठाकर उन्होंने जनता को प्रणाम किया और आगे बढ़ने लगे। मैं उनके दाहिनी ओर थी। मेरी ही तरफ से एक हृष्ट-पुष्ट युवक, जो खाकी वर्दी पहने और हाथ जोड़े हुए था, भीड़ को चीरता हुआ एकदम घुस आया। मैं समझी कि यह बापू के चरण छूना चाहता है; रोज ऐसा ही हुआ करता था। बापू चाहे जहाँ जाएँ, लोग उनका चरण छूने और प्रणाम करने के लिए पहुँच ही जाते थे। हम लोग भी अपने ढंग से उनसे कहा करते कि बापू को यह ढंग पसन्द नहीं। पैर छूकर चरण-रज लेनेवालों से बापू भी कहा ही करते कि "मैं तो साधारण मानव हूँ। मेरी चरण-रज क्यों लेते हैं?" इसी कारण मैंने इस आगे आनेवाले आदमी के हाथ को धक्का देते हुए कहा : "भाई! बापू को दस मिनट देर हो गयी है, आप क्यों सता रहे हैं?" लेकिन उसने मुझे इस तरह जोर से धक्का मारा कि मेरे हाथ से माला, पीकदानी और नोटबुक नीचे गिर गयी। जब तक और चीजें गिरीं, मैं उस आदमी से जूझती ही रही। लेकिन जब माला भी गिर गयी, तो उसे उठाने के लिए नीचे झुकी। इसी बीच दन-दन...एक के बाद एक तीन गोलियाँ दगीं। अँधेरा छा गया! वातावरण धूमिल हो उठा और गगनभेदी आवाज हुई। "हे रा—म! हे राम..." कहते हुए बापू मानो सामने पैदल ही छाती खोलकर चले जा रहे थे। वे हाथ जोड़े हुए थे और तत्काल वैसे ही नीचे जमीन पर आ गिरे। कितने ही लोगों ने उस समय बापू को पकड़ने का यत्न किया। आभा बहन भी नीचे गिर गयीं। एकदम उन्होंने बापू का सिर अपनी गोद में ले लिया। मैं तो समझ ही नहीं पायी कि आखिर यह क्या हो गया? यह सारी घटना घटते मुश्किल से 3-4 मिनट लगे होंगे। धुँआ इतना घना था। गोलियों की आवाज से मेरे कान बहरे-से हो गये। लोगों की भीड़ उमड़ पड़ी।

हम दोनों लड़कियों का क्या हाल हुआ होगा, यह तो शब्दों में लिखा ही नहीं जा सकता। सफेद वस्त्रों पर से रक्त की धार छूट पड़ी। बापू की घड़ी में ठीक 5 बजकर 17 मिनट हुए थे। मानो बापू जुड़े हुए हाथों से हरी घास में पृथ्वी माता की गोद में अपार

निद्रा में सो रहे हों और हमारे अनुचित साहस पर नाराज न होने पर माफ कर देने के लिए कह रहे हों।

उन्हें कमरे में ले जाने तक दस मिनट तो लग ही गये। दुर्भाग्य से वहाँ कोई डॉक्टर भी नहीं मिला। सुशीला बहन की प्राथमिक चिकित्सा (फर्स्ट एड) की पेटी में खोजने पर भी कोई खास दवा नहीं मिली। वे कहते ही थे कि ''मेरा सच्चा डॉक्टर तो रामजी है।'' हम अल्पात्मा लोग अपने स्वार्थ के लिए उन्हें जिलाने के निमित्त उनके अपने मात्र के लिए स्वीकृत इस सिद्धान्त को भ्रष्ट कर दें, शायद इसीलिए हमें उस समय कुछ सूझ नहीं पाया हो! सरदार दादा तो अभी अपने घर भी नहीं पहुँचे होंगे कि पीछे लौटे। हम लोग तो बुक्का फाड़-फाड़कर रो रहे थे, पर बापू को आज दया नहीं आ रही थी! किसी समय मुझ जैसी को उदास देखते, तो उसका कारण जानने के लिए पिल पड़ते और उसे जानकर ही छोड़ते थे। लेकिन आज तो बापू सब कुछ सहन किये जा रहे हैं!

सात बार की ऑटोमेटिक पिस्तौल की पहली गोली मध्य रेखा से साढ़े तीन इंच दाहिनी ओर नाभि से ढाई इंच ऊपर पेट में लगी। दूसरी मध्य रेखा से एक इंच दूर और तीसरी दाहिनी ओर छाती में मध्य रेखा से चार इंच दूर लगी थी। पहली और दूसरी गोली शरीर के आर-पार हो गयी थी और तीसरी फुफ्फुस में समा गयी थी। उसका ऊपर का कवच बाद में कपड़ों में मिला और आर-पार निकली हुई गोलियाँ तो प्रार्थना-स्थल पर ही मिलीं। अत्यधिक रक्त बहने के कारण चेहरा तो करीब दस मिनट में ही सफेद पड़ गया।

बापू नहीं रहे! : भाई साहब ने तो कलेजे पर पत्थर रखकर अस्पताल में फोन का ताँता ही लगा दिया। बाहर तो हजारों मानवों की भीड़ उमड़ पड़ी थी। भाई साहब बड़ी मुश्किल से सरदार के बंगले से होकर विलिंगटन अस्पताल में पहुँचे। लेकिन वहाँ से भी निराश होकर वापस लौट आये। इस बीच कन्हैयालाल मुंशी आ गये। सरदार दादा भी तुरत पहुँच गये। मणिबेन ने हम लोगों को ढाढ़स बँधाया। मुझे गीता-पाठ शुरू करने के लिए कहा। मणिबेन के आने से और उनके तथा सरदार दादा के आश्वासन की ममताभरी मदद मिलने से मैं अपने को थोड़ा-सा सँभाल पायी और गीता-पाठ शुरू कर दिया। मुंशीजी ने पाठ में पूरा साथ दिया। इसी बीच कर्नल भार्गव आ पहुँचे और उन्होंने बापू का परीक्षण शुरू कर दिया। दो मिनट तो सरदार दादा से लेकर हम सभी उत्सुकताभरी आश्वासन की एक लहर का अनुभव करने लगे। ऐसा लगा कि राहत की कुछ खबर सुनायी पड़े। किन्तु उन्हें तो देखते ही मालूम पड़ गया कि शरीर में अब कुछ जान नहीं। लेकिन कहावत है न कि डॉक्टर तो अन्त तक कुछ कहता ही नहीं। महापुरुष के प्रयाण का यह भयंकर समाचार देना इस डॉक्टर के लिए बापू को बेधने वाली भीषण गोली से भी कठोर था। इन्होंने मेरा तो ऑपरेशन बड़ी ही सावधानी से किया था। आज सुबह ही इनके और इनके नर्सिंग-होम के बारे में बातें हो चुकी थीं। समय बिताने के लिए इन्होंने दस-पन्द्रह मिनट लगा दिये और अन्त में कह ही दिया : ''मनु बेटी! अब बापू नहीं रहे!''...वज्रप्रहार-सा यह समाचार सुनने के साथ ही जिस कमरे में रात में हम बच्चे और बापू किलकारियाँ भरते थे, वहीं भयंकर विलाप छा गया। देवदास काका, गोपू, दोनों सबसे छोटे लड़के और नन्हा पौत्र—सभी बापू की छाती पर कठिन वेदना से विलाप करने लगे। और पंडितजी तो...ओहो!... भगवन्, ऐसा दिन तो दुश्मन को भी देखने को न मिले! नन्हे बच्चे की तरह सरदार दादा की गोद में मुँह छिपाकर, बिलख-बिलखकर रोने लगे। फिर हम जैसों की तो बात ही क्या थी?

अन्तिम स्मृति की प्रसादी : देखते-देखते लाखों की भीड़ जुट गयी। करीब घण्टेभर तक यह सब चलता रहा। आखिर सरदार दादा ने अपने लौहपुरुष के बाने के अनुरूप इस कठोरतम परीक्षा को भी पास करने में कोई कोर-कसर नहीं दिखायी। अकेले वे ही सभी को ढाढ़स बँधा रहे थे। बापू के चश्मे और चप्पल का कहीं पता न था। तारीख 30 को प्रार्थना में जाने से पूर्व बातचीत करते हुए बापू ने खुद ही अपने नख काटे और मुझे फेंकने के लिए दिये थे। लेकिन मैं रसिक भाई और ढेबर भाई से बातें करने में उलझी रही, इसलिए वे कागज पर के नख वैसे ही रह गये। मैंने उन्हें अनमोल रत्न की तरह उठाकर सन्दूक में रख दिया (उनमें एक अँगूठे का, एक उँगली का और एक छोटी उँगली का भी नख था।)। इसे मैंने आज उनके शरीर का अन्तिम स्मृति की प्रसादी के रूप में अपने पास सुरक्षित रख लिया।

हमारे बापू! : अन्त में लार्ड माउण्टबैटन सभी को शान्त करने लगे। बाहर की भीड़ पूज्य बापू का समाचार सुनने के लिए आतुर है, इसलिए सरदार दादा ने रेडियो पर सारी बातें प्रसारित कर दीं। पंडितजी तो बोल ही नहीं पाते थे। सारी हिम्मत बटोरकर बोले : ''हमारे बापू...'' फिर एक गहरी साँस छोड़कर सिसकते हुए कहा : ''बापू अब हमारे पास नहीं रहे।''...उस समय तो धरती भी काँप उठे, इस तरह जनता बिलख उठी।

अब कैसे करना! : आखिर जनता की असाधारण भीड़ देख छत पर से ही बापू का दर्शन कराने की व्यवस्था होने लगी। उस समय मैं किसी काम से बाहर निकली। पंडितजी ने एकदम मुझे पकड़ लिया और क्षणभर भूल गये, कहने लगे : मनु! आओ बापू को पूछो, अब कैसे करना! हे भगवन्!...ऐसे विद्वान, अपने देश और दुनिया के इस महापुरुष...! मैं तो उनके साये में खुलकर रो पड़ी। वे भी उतने ही रोये। उस समय हम दोनों की स्थिति में इतनी एकतानता थी कि इतने बड़े पंडितजी भी मुझे जैसी नादान बालिका को आश्वस्त करने में असमर्थ सिद्ध हुए।

शायद बापू जाग जाएँ! : ...इसी

बीच विभिन्न देशों के राजदूत आते हुए दीख पड़े। उनके साथ पंडितजी भीतर आये। सतत गीता-पाठ करने में मैं ही प्रमुख थी। भाई साहब और काका सारी व्यवस्था करने के निमित्त बार-बार बाहर आते-जाते थे। सुशीला बहन तो थी ही नहीं। और सबसे श्लोक कहते नहीं बनते थे। प्यारेलालजी भी व्यवस्था में लगे हुए थे। फिर पंडितजी कहने लगे : ''मनु! और जोर से गीता-पाठ करो, शायद बापू जाग जाएँ!'' इतने वैज्ञानिक विद्वान होकर भी वे क्षणभर सब कुछ भूलकर बार-बार आते और बापू के शरीर पर हाथ फेरकर जाते थे, मानो स्वयं भूल तो नहीं कर रहे हों कि बापू सचमुच नहीं हैं।

महात्मा गांधी की जय! : और कैमरे वालों का तो पूछना ही क्या है? छत पर मंच बनाया गया और बापू का शव लाया गया। उसे देख छोटे-बड़े, आबाल-वृद्ध सभी की आँखों से अविरल अश्रुधाराएँ बह पड़ीं, मानो चारों ओर से बारिश ही हो रही हो। 'महात्मा गांधी की जय' के नारों से आकाश गूँज उठा। देखते-देखते जनता की श्रद्धांजलियों के साथ फूलों और पैसों का ढेर ही लग गया। सर्वधर्मों की समानतापूर्वक प्रार्थना जारी थी।

दो बजे बापू की देह को नहलाने के लिए बाथरूम में ले जानेवाले थे। लेकिन अच्छा हुआ कि पूज्य शान्तिकुमार भाई आ पहुँचे। वे पूज्य बा के अन्तिम समय में भी उपस्थित थे और आज बापू के भी! उन्होंने हिन्दूधर्मानुसार अन्त्यविधि करायी, याने अर्थी बनाना, गाय के गोबर से सारी जमीन लीपना आदि। यदि वे यह सब न बतलाते, तो साधारणतः हममें से कोई भी यह नहीं जानता था।

यह घड़ी भी उतनी ही भयंकर थी। बापू की देह बाथरूम में लायी गयी। एक-एक कपड़ा उतारा गया। बापू की आस्ट्रेलियन ऊन की शाल गोली से छिद गयी थी और तीन जगह जल भी गयी थी। धोती और चादर भी खून से सराबोर थीं।

बापू की देह पटरे पर सुलायी गयी। रक्त बहते हुए चरण 'भाई एकलो जाणे रे' गीत की इस कड़ी को साकार कर रहे थे। काका और हम सब इस तरह आर-पार बिंधे हुए बापू के शरीर को देख फूट-फूटकर रो रहे थे, फिर भी क्रूर विधाता को दया नहीं आयी! हमारी हृदय-विदारक चीखों से किसे क्योंकर दया आये? कारण हम लोग अत्यन्त पापी थे, फिर विधाता की दया की आशा कैसे रख सकते हैं? कड़कड़ाती सर्दी और हिम-सा ठण्डा पानी बापू की देह पर छोड़ने की कौन हिम्मत करेगा?...

बापू को नहलाकर पटरा कमरे के बीच रखा गया। उस पर सफेद खादी की चादर बिछायी गयी और बापू की देह को सुलाया गया।

'कर ले सिंगार!' : भाई साहब ने उनके गले में सूत का हार और उनकी रामनाम जपने की माला पहनायी। गले में और छाती पर चन्दन-केसर का लेप किया गया। मस्तक पर कुंकुम तिलक लगाया गया। सिर की बाजू पत्तियों से 'हे राम' और पैर की बाजू 'ॐ' लिखा गया। सारा कमरा गुलाब और अन्य सुगन्धित फूलों से इतना सुवासित हो उठा था, मानो अर्थी सिर्फ फूलों से ही बनी हो। देखते-देखते साढ़े 3 का घण्टा बजा। आज मुझे जगाने के लिए बापू के प्रेमभरे हाथ का स्पर्श न हो पाया। आज भाई साहब को उठाते हुए 'व्रजकिशन' की पुकार सुनायी नहीं पड़ती थी। सभी ने कहा : ''नियत समय पर ब्राह्म मुहूर्त में प्रार्थना की जाए।'' आज हम लोगों को आदेश देकर 'नम्यो' कहनेवाले बापू की आवाज नहीं थी। 'दो मिनट की शान्ति' कौन कहेगा?

और 'ईशावास्यमिदं सर्वम्' से आरम्भ कर सारी प्रार्थना बड़ी मुश्किल से शुरू की। 'कर ले सिंगार' भजन गाया और फिर 'वहाँ से नहीं आना होगा...'। क्या बापू के इस पवित्र और तेजस्वी चेहरे का पुनः कभी भी दर्शन न होगा? ये प्रेमभरी आँखें! यह आश्रयदायी वात्सल्य! यह मुक्त हास्य! अजीब निडरताभरी विशाल छाती और इस चमकते श्वेत चर्म वाले बापू का कभी भी दर्शन न होगा? राग तो है आसावरी, पर है तो भयंकर निराशा ही!

फिर लोगों की असह्य भीड़ हो जाने से बापू की देह ऊपर लायी गयी। देश-विदेश के दूत एवं प्रतिनिधि और सरकारी नौकर भारतीय शान्ति के सम्राट के अन्तिम दर्शन के लिए पहुँच गये थे। ❑

शोक-संवेदना

सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी के पूर्व संयोजक स्व. कृष्णराज मेहता की धर्मपत्नी **उषा देवी मेहता** का निधन 5 जनवरी, 2018 को पुणे में हो गया। आप 92 वर्ष की थीं।

आप वर्षों तक सर्व सेवा संघ, वाराणसी परिसर में रही हैं। वाराणसी परिसर से आपका बहुत ही मृदुल संबंध रहा और इस केन्द्र को हमेशा याद करती रहीं। परिसर निवासी आपको श्रद्धापूर्वक बाईजी कहते थे। आप अत्यन्त ही करुणाशील, प्रेमल एवं मिलनसार थीं।

सर्व सेवा संघ प्रकाशन कार्यालय में संयोजक अरविन्द अंजुम के नेतृत्व में शोक सभा का आयोजन किया गया। शोक सभा में सर्वोदय जगत के संपादक अशोक मोती, परिसर के संयोजक विजय भाई सहित सभी कार्यकर्ताओं ने दो मिनट का मौन रखकर अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की।

सर्व सेवा संघ प्रकाशन एवं सर्वोदय जगत परिवार ईश्वर से प्रार्थना करता है कि दिवंगत आत्मा को शांति एवं परिवारीजनों को यह पीड़ा सहन करने की शक्ति प्रदान करे। **-स.ज.प्रतिनिधि**

30 जनवरी : गांधी निर्वाण दिवस पर विशेष

कर्म करते हुए मृत्यु

❑ कृष्ण कृपलाणी

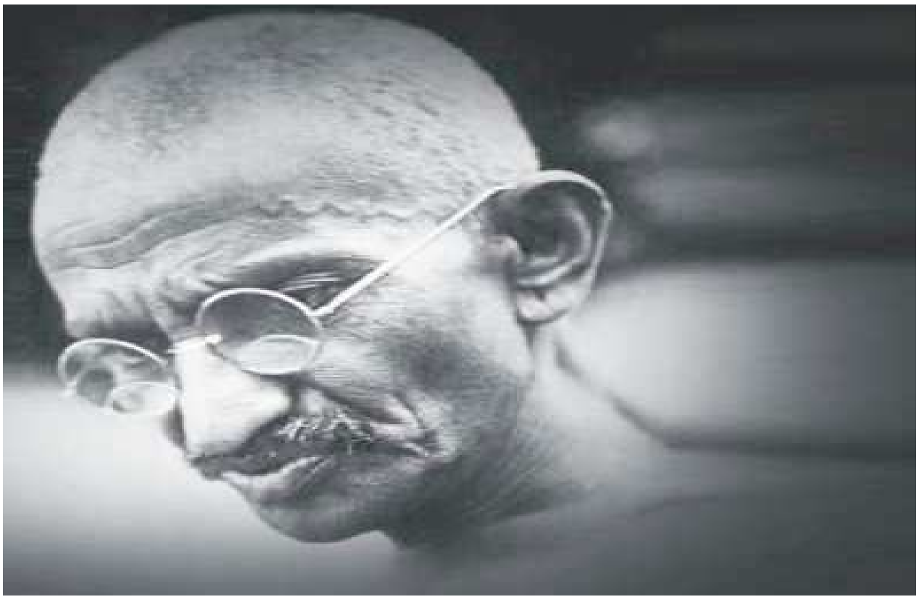

भीड़ के साथ मिलकर प्रार्थना करना गांधीजी का पुराना कायदा था। वे कहीं भी रहें, हर शाम वे किसी खुले मैदान में प्रार्थना करते थे और कोई बड़ी या छोटी भीड़ उनके सामने रहती थी। इस अनुष्ठान का कोई रूढ़िवादी ढर्रा नहीं था बल्कि यह यदृच्छ था जिसे उन्होंने अनेक धार्मिक आस्थाओं के मिलनस्थल के रूप में विकसित किया था। उनके धर्मग्रंथों के चुने हुए पद पढ़े जाते और भजन गाये जाते। आखिर में वे जनसभा से कुछेक शब्द कहते जो आमतौर पर रेडियो या प्रेस के द्वारा पूरे राष्ट्र तक पहुंच जाते थे। वे किसी निश्चित धार्मिक विषय पर नहीं बल्कि किसी भी ऐसे प्रश्न पर बोलते थे, जो सामयिक महत्त्व का होता था। विषय चाहे जो हो, वे उसे अपने खास ढंग से एक नैतिक और आध्यात्मिक स्तर तक उठा देते थे। फलस्वरूप अगर उसका सरोकार किसी राजनीतिक प्रश्न से होता तो भी लगता कि कोई धर्मपुरुष सत्य-निष्ठा का उपदेश दे रहा हो।

सभा में हर कोई शामिल हो सकता था। कोई रोकटोक न थी और न कोई पूछताछ की जाती थी। सबके सामने एक ऊंचे चबूतरे पर बैठे गांधीजी आसानी से निशाना बन सकते थे। अभी तक उन्होंने सिर्फ भीड़ की अपार श्रद्धा से सुरक्षा चाही थी जो उनके पैर छूने आगे बढ़ती आती थी कि यह आदर दिखाने का हिन्दू तरीका है। लेकिन अब बेढब समय आ गया था। हिंसक भावनाएं भड़की हुई थीं और हवा में नफरत की बू बसी थी। पाकिस्तान में मुस्लिम कट्टरता ने भारत में भी ऐसी ही कट्टरता को जन्म दिया था, और इस प्रतिक्रिया का जुझारू दस्ता इस्लाम के नाम पर हिन्दुओं और सिखों पर हुए अत्याचारों का बदला लेने की राह में गांधीजी को प्रमुख बाधा समझता था।

पाकिस्तान की तरह यहां भी 'धर्म खतरे में है' का नारा बर्बरता के दानव को आशीर्वाद का जामा पहनाता था। गांधीजी को चेतावनी दी गयी थी और सुरक्षा पुलिस परेशान थी। लेकिन उन्होंने किसी प्रकार का हथियारबंद संरक्षण लेने से मना कर दिया। वे प्रेम की शक्ति को छोड़ किसी और ढंग से जीने को तैयार नहीं थे। चालीस साल पहले जब जोहान्सबर्ग में एक क्रुद्ध पठान ने उनको मारने की धमकी दी थी तब उन्होंने शांतिपूर्वक कहा था : 'बीमारी से या किसी और ढंग से मरने की अपेक्षा एक भाई के हाथों मरना मेरे लिए दुख का कारण नहीं हो सकता। और अगर इस हालत में भी मैं अपने हमलावर के खिलाफ क्रोध या घृणा के विचारों से मुक्त रहा तो मैं जानता हूं कि वह मेरे शाश्वत कल्याण का कारण होगा।'

उन्हें इस 'शाश्वत कल्याण' का वरदान देने से दस दिन पहले, 20 जनवरी को भाग्य ने उनकी एक और परीक्षा ली। वे जनसभा को रोजाना की तरह प्रार्थना के बाद संबोधित कर रहे थे कि जहां वे बैठे थे उससे कुछ गज दूरी पर एक बम आकर फटा। गांधीजी ने बिना कुछ ध्यान दिये अपना प्रवचन जारी रखा। बम फेंकने वाला युवक पकड़ा गया और उसने फौरन स्वीकार कर लिया कि उसका मकसद गांधीजी को मारना था। बाद में जब लेडी माउंटबेटन ने गांधीजी को 'सलामत बच जाने' पर और विस्फोट के समय उनकी शौर्यपूर्ण निःसंगता पर बधाई दी, तो उन्होंने बताया कि वे साहस के लिए किसी प्रशंसा के अधिकारी नहीं हैं क्योंकि उन्होंने समझा था कि वह शोर सेना की रोजमर्रा की चांदमारी के कारण हुआ था। उन्होंने आगे कहा : *'अगर कोई मुझे करीब से गोली मारे और मैं मुस्कुराकर हृदय में ईश्वर का नाम जपते हुए गोली का सामना करूं तो मैं सचमुच बधाई का पात्र कहा जाऊंगा।'*

वे हमेशा सलीब से प्रेम करते आए थे और सूली पर चढ़ने के इस प्रतीक से, अपने दोषी साथियों के पापों के प्रायश्चितस्वरूप हंसकर कष्ट उठाने के इस प्रतीक से हमेशा

रोमांचित होते रहे थे। लगता था, शहादत की एक दिली इच्छा, एक अचेतन आकांक्षा जिसे वे कभी-कभी सचेत इच्छा के रूप में व्यक्त करते थे, हमेशा उनकी कल्पना में मौजूद रहती थी जिसे बम के धमाके ने और प्रखर और स्पष्ट बनाया। उनकी पौत्री मनु रात में उनके सोने से पहले, बैठकर उनके सिर या पैरों की मालिश करती थीं और गांधीजी उनके सामने अपने विचार खुलकर व्यक्त कर देते थे। उनकी सूचना के मुताबिक धमाके के बाद के दस दिनों में अनेक बार उन्होंने 'हत्यारे की गोलियों' या 'गोलियों की बौछार' की बातें कही थीं—अशुभ के पूर्वाभास के रूप में नहीं बल्कि एक संघर्षरत जीवन के शोभायमान चरमोत्कर्ष की इच्छा के रूप में।

29 जनवरी को यानी धरती पर अपनी आखिरी रात में उन्होंने मनु से कहा था : 'यदि मैं लंबे समय की बीमारी से अथवा किसी फोड़े-फंसी से भी मरूं, तो लोगों को नाराज करने का खतरा उठाकर भी संसार के सामने यह घोषणा करना तुम्हारा धर्म होगा कि जैसा ईश्वर-परायण मनुष्य होने का मैं दावा करता था वैसा सचमुच मैं था नहीं। अगर तुम ऐसा करोगे तो मेरी आत्मा को शांति मिलेगी। यह भी याद रखो कि *अगर कोई आदमी गोली मारकर मेरे प्राण ले ले, जैसे किसी ने उस दिन बम से मेरे प्राण लेने की कोशिश की थी, और मैं कराहे बिना उस गोली का सामना करूं, रामनाम लेते हुए मेरे प्राण निकल जायें, तो ही मेरा दावा सच्चा साबित होगा।*'

इसे भविष्यवाणी न माना जाये, इसके लिए हमें याद रखना होगा कि गांधीजी ने आने वाली घटनाओं के बारे में पैगंबरों जैसे पूर्वज्ञान का कभी दावा नहीं किया। वास्तव में उन्होंने तीन दिन बाद वर्धा आश्रम के लिए चल पड़ने का एक तदर्थ कार्यक्रम भी बनाया था। वे वहां से पाकिस्तान जाना चाहते थे और उन्हें जिन्ना के और उनके देश का कल्याण आपसी सदिच्छा और विश्वास में निहित था। उन्हें यह भी पता था कि पाकिस्तान में उनकी मौजूदगी वहां बाकी बचे हिन्दुओं को दिलासा देगी।

उन्हें यहसब कुछ कर सकने की आशा थी, मगर अब पुराने दिनों जैसा विश्वास नहीं रह गया था जब उनकी यात्रा की एक एक मद की रूपरेखा पहले से ही सावधानी से तैयार की जाती थी। वे अपने कार्यक्रम के बारे में एक एक बात पर ध्यान देते थे और अपने सभी कामों में सावधानी और सटीकता बरतते थे, मगर इस बार वे सब कुछ को अस्पष्ट और अनिश्चित छोड़कर ही संतुष्ट थे गोया अपने को पूरी तरह ईश्वर के भरोसे छोड़कर उन्हें चिन्ता ही न हो कि आगे क्या होगा। जब मनु ने सुझाया कि उनके तीन दिन बाद पहुंचने की खबर वर्धा भेज दी जाये तो उन्होंने ऐसा नहीं करने दिया और बोले : 'कौन जानता है, कल क्या होने वाला है?'

वे दुखी और निराश थे कि आजादी मिलने के कुछ ही दिनों के अंदर जनता की मनोस्थिति में बुनियादी तौर पर बिगाड़ आया था तथा संघर्ष और बलिदान के बहादुरों के आदर्श की जगह सत्ता और आराम तलब जीवन की भूख ने ले ली थी; कि आत्मसंयम और करुणा सिखाने वाले धर्म का प्रयोग बेरोक नफरत और हिंसा फैलाने के लिए बहाने के तौर पर किया जा रहा था। वे कविता पढ़ने के कोई खास शौकीन नहीं थे तथा भजन और नीति के पद उनके लिए काफी होते थे, लेकिन उस रोज वे एकाएक उर्दू के प्रसिद्ध जनकवि नजीर अकबराबादी का शेर पढ़ने लगे (अकबराबाद आगरा का दूसरा नाम है) जो उनसे पहले हो गुजरे उमर ख्य्याम की याद दिलाता था :

है बहारे-बागे-दुनिया चंद रोज।
देख ले इसका तमाशा चंद रोज।।

हमेशा की तरह 30 जनवरी का दिन भी साढ़े तीन बजे सुबह की प्रार्थना के साथ आरंभ हुआ। उन्होंने मनु से एक भजन गाने को कहा जिसे उन्होंने पहले कभी गाने के लिए नहीं कहा था :

ऐ मनुष्य, तू थका हो या नहीं, आराम मत कर!

शाश्वत पुरुष

"मित्रों... हमारे जीवन की ज्योति चली गयी और सर्वत्र अंधकार ही अंधकार छा गया है। मैं नहीं जानता कि आपसे क्या कहूं और कैसे कहूं। हमारे प्यारे नेता, जिन्हें हम बापू कहते थे, हमारे राष्ट्रपिता अब नहीं रहे।... जैसे हम उन्हें अनेक वर्षों से देखते आ रहे हैं, वैसे फिर नहीं देख पायेंगे। हम उनसे सलाह करने और सांत्वना प्राप्त करने के लिए दौड़कर उनके पास नहीं जा पायेंगे।

मैंने कहा कि प्रकाश चला गया है, लेकिन मेरा कहना गलत था; क्योंकि जो ज्योति इस देश में प्रगटी और जली, वह साधारण ज्योति नहीं थी। जिस ज्योति ने इतने वर्षों तक इस देश को प्रकाशित रखा है, वह अनेक वर्षों तक आगे भी इस देश को प्रकाशित करेगी; वह ज्योति हजार वर्ष के बाद भी इस देश में दिखायी देगी। दुनिया उसे देखेगी और असंख्य हृदयों को वह सांत्वना देगी। कारण, वह ज्योति जीते-जागते सत्य का प्रतीक थी। वह शाश्वत पुरुष अपने शाश्वत सत्य के साथ हमारे बीच था, हमें सत्य-पथ की याद दिलाता था, हमें भूलों से बचाता था और इस प्राचीन देश को स्वाधीनता का मार्ग दिखाता था।"

–पंडित जवाहरलाल नेहरू

(महात्मा गांधी की हत्या के बाद 30 जनवरी, 1948 की रात्रि आकाशवाणी से दिया गया भाषण)

न ही उन्होंने खुद आराम किया, भले ही दिल में वे कितने ही निढाल और उदास रहे हों। दूसरे दिनों की तरह वह दिन भी मुलाकातों और पत्राचार के बोझ से लदा हुआ था। वे उस मसविदे को पूरा करने के प्रति चिन्तित थे जिसे उनके जीवनी-लेखकों ने उनकी अंतिम इच्छा या वसीयत कहा है, और इसे उन्होंने पूरा किया। वास्तव में यह कांग्रेस की भावी रूपरेखा के बारे में उनकी प्रस्तावित योजना थी और वे चाहते थे कि कांग्रेस के नेता इस पर विचार करें।

कांग्रेस को वर्तमान रूप देने में उन्होंने किसी भी अन्य व्यक्ति से अधिक योगदान दिया था, और कांग्रेस जिन विविध हितों से मिलकर बनी थी उनको समन्वित करके उन्होंने ही उसे भारत की स्वाधीनता पाने के लिए एक शक्तिशाली साधन बनाया था। अब वे महसूस करते थे कि अपना उद्देश्य पा लेने के बाद कांग्रेस अपनी उपयोगिता खो चुकी थी और उसे खुद को भंग कर लेना चाहिए। भारत के नगरों और कस्बों से भिन्न, उसके कई लाख गांवों की सामाजिक, नैतिक और आर्थिक स्वाधीनता उनका आदर्श थी, और जो कांग्रेसी उनके इस आदर्श में विश्वास रखते हों वे मिलकर एक लोकसेवक संघ बनायें तथा पद और सत्ता की छीनाझपटी छोड़कर स्वेच्छा से गांवों के करोड़ों भूखों, बेसहारों की सेवा करें।

उनकी आखिरी मुलाकात सरदार पटेल के साथ थी। पटेल और नेहरू के बीच टकराव की अफवाहें फैली हुई थीं, और यह सुझाव आया कि इनमें से कोई एक, दूसरे को पूरी आजादी देने के लिए मंत्रिमंडल छोड़ दे। गांधीजी सरदार पटेल को यह बात समझाना चाहते थे कि देश को उनकी और नेहरू, दोनों की जरूरत थी। (गांधीजी को नेहरू से प्रार्थना-सभा के बाद मिलना था।) जब वे बातें कर रहे थे, मनु ने गांधीजी को सूचना दी कि काठियावाड़ के दो नेता उनसे मिलने के लिए इंतजार कर रहे थे। गांधीजी ने जवाब दिया : *'उनसे कहो कि अगर मैं जिन्दा रहा तो प्रार्थना के बाद मेरे साथ चलते हुए बातें कर सकते हैं।'*

प्रार्थना के लिए देर हो रही थी और अनियमितता से नफरत करने वाले गांधीजी तेजी से बाहर लान की ओर बढ़े जहां जनता पहले से बैठी हुई थी। उनके हाथ उनकी दोनों पौत्रियों (या और भी सही ढंग से कहें तो भाई की पौत्रियों) मनु और आभा के कंधों पर थे और वे कहा करते थे कि ये ही उनकी बैसाखियां थीं। कुछेक सीढ़ियां चढ़ने के बाद वे रुके, उनके कंधों से हाथ उठाया और भीड़ के नमस्कार को स्वीकार करने के लिए हाथ जोड़ दिये। एक गठे बदन का युवक धक्का देते हुए आगे बढ़ा, और जब मनु ने उसे रोकने की कोशिश की तो उन्हें झटक दिया। फिर वह गोया आदर देने के लिए गांधीजी के आगे झुका और करब से गांधीजी के सीने में तीन गोलियां उतार दीं। दो गोलियां तो सीधे निकल गयीं और तीसरी दाहिने फेफड़े में फंसी पायी गयी। गांधीजी धरती पर गिर पड़े। उनके मुंह से केवल राम का नाम निकला जो ईश्वर के लिए उनका पसंदीदा नाम था। भीड़ समझ सके कि हुआ क्या था, इससे पहले ही वे स्वर्गवासी हो गये।

वे वैसे ही मरे जैसे मरने की कामना उन्होंने हमेशा की थी—बिना किसी कराह-पुकार के, होंठों पर ईश्वर का नाम लिए हुए। उन्होंने कुछ करने, नहीं तो मरने का संकल्प ले रखा था। लेकिन उन्होंने कर्म भी किया और मृत्यु को भी प्राप्त हुए। ईश्वर ने उनकी प्रार्थना सुन ली थी और उनकी इच्छा को पूरा किया था।

ऐसे शरीरांत को दुखद कहने का अधिकार भला किसे है? ❑

कौन किसे आश्वासन दे?

"आखिर अस्थि-रथ यमुनाघाट पर आकर खड़ा हुआ। जीपनाव (डक) पहले से ही सजाकर रखी गयी थी। उसमें रामदास काका, देवदास काका, सरदार दादा, पंडितजी, पंतजी, पद्माजा बहन, सरोजिनी देवी, मौलाना साहब आदि ने अस्थि-कुंभ को पधराया। यह सैनिक डक जमीन से चलकर खास ढलाव पर से यमुना नदी में उतरी।...इतनी कड़ाके की सर्दी में भी हजारों लोग जल में उतरकर दर्शन करने आ रहे थे। 30-40 लाख की जनता यह दृश्य बड़ी करुणा के साथ देख रही थी। ऊपर आकाश, नीचे पवित्र जल, बीच में लाखों जनता की आंखों में अश्रुधाराएं और हृदय में इष्टदेव की आराधना चल रही थी। सतत वेदमंत्र और रामधुन हो रही थी। एक ओर से आने वाला गंगा मैया का शुभ्र और दूसरी ओर से यमुना मैया का श्याम जल तथा बीच में दोनों को मिलाकर गुप्त रूप में रहने वाली सरस्वती–ऐसी त्रिवेणी संगम में रामदास ने अस्थि-कलश को पधराया।

जवाहरलालजी, देवदास बिलख-बिलख कर रो पड़े। कौन किसे आश्वासन दे? गंगा और यमुना दोनों बहनें भी इस समय मानो एक-दूसरी से मिलकर अश्रुधाराएं बहा रही थीं! सूर्यनारायण भी यह दृश्य देख न सके और मानो इसीलिए वे बादलों में छिप गये। 30-40 लाख मानवों की भीड़ का करुण क्रंदन कानों से सुना नहीं जा रहा था! ...

...40-50 लाख की भीड़ के सामने ऊंचे मंच पर पं. जवाहरलाल नेहरू ने भरे हुए गले से सिसकते हुए कहा : 'आखिर आज मैं त्रिवेणी में अपने बापू को छोड़ आया!'" (बापू की अंतिम झांकी से) **–मनु बहन**

गांधी की हत्या

मैं कुछ कहना चाहता हूं

❑ विनोबा

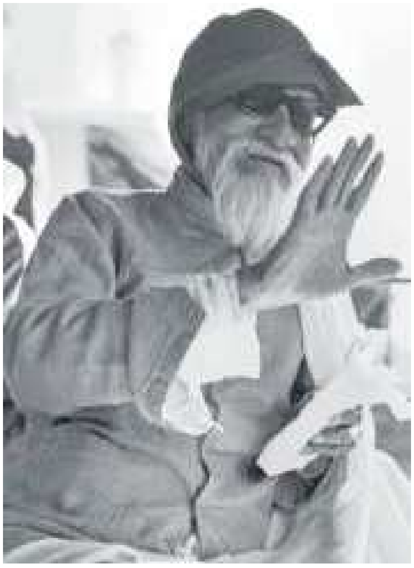

मैं उस प्रांत का हूं, जिसमें आर एस एस का जन्म हुआ। जाति छोड़कर बैठा हूं। फिर भूल नहीं सकता कि उसकी जाति का हूं, जिसके द्वारा यह घटना हुई। कुमारप्पा जी और कृपलानी जी ने फौजी बंदोबस्त के खिलाफ परसों सख्त बातें कही। मैं चुप बैठा रहा। वे दुःख के साथ बोलते थे। मैं दुःख के साथ चुप था। न बोलने वाले का दुःख जाहिर नहीं होता। मैं इसलिए नहीं बोला कि मुझे दुःख के साथ लज्जा भी थी। पवनार में मैं वर्षों से रह रहा हूं, वहां पर भी चार-पांच आदमियों को गिरफ्तार किया गया है। बापू की हत्या से किसी न किसी तरह का संबंध होने का शुबाह है। वर्धा में गिरफ्तारियां हुईं, नागपुर में हुई, जगह-जगह हो रही है। यह संगठन इतने बड़े पैमाने पर बड़ी कुशलता के साथ फैलाया गया है। इसके मूल बहुत गहरे पहुंच चुके हैं। यह संगठन ठीक फॉसिस्ट ढंग का है। उसमें महाराष्ट्र की बुद्धि का प्रधानतया उपयोग हुआ है। चाहे वह पंजाब में काम करता हो या मद्रास में। सब प्रांतों में उसके सालार और मुख्य संचालक अक्सर महाराष्ट्रीय और अक्सर ब्राह्मण रहे हैं। गुरु जी भी महाराष्ट्रीय ब्राह्मण हैं। इस संगठन वाले दूसरों को विश्वास में नहीं लेते। गांधीजी का नियम सत्य का था। मालूम होता है कि इनका नियम असत्य का होना चाहिए। यह असत्य उनकी टेकनिक-उनके तंत्र और उनकी फिलॉसोफी का हिस्सा है।

एक धार्मिक अखबार में मैंने उनके गुरुजी का एक लेख या भाषण पढ़ा। उसमें लिखा था कि *''हिन्दू धर्म का उत्तम आदर्श अर्जुन है, उसे अपने गुरुजनों के लिए आदर और प्रेम था, उसने गुरुजनों को प्रणाम किया और उनकी हत्या की, इस प्रकार की हत्या जो कर सकता है वह स्थितप्रज्ञ है।''* वे लोग गीता के मुझसे कम उपासक नहीं हैं। वे गीता उतनी श्रद्धा से रोज पढ़ते होंगे, जितनी श्रद्धा मेरे मन में है। मनुष्य यदि पूज्य गुरुजनों की हत्या कर सके तो स्थितप्रज्ञ होता है, यह उनकी गीता का तात्पर्य है। बेचारी गीता का इस प्रकार से उपयोग होता है। मतलब यह कि यह सिर्फ दंगा-फसाद करने वाले उपद्रवकारियों की जमात नहीं है। यह फिर्लासफरों की जमात है। उनका एक तत्त्वज्ञान है और उसके अनुसार निश्चय के साथ वे काम करते हैं। धर्मग्रंथों के अर्थ करने की भी उनकी एक खास पद्धति है।

गांधीजी की हत्या के बाद महाराष्ट्र की कुछ अजीब हालत है। यहां सब कुछ आत्यंतिक रूप में होता है। गांधी हत्या के बाद गांधी वालों के नाम पर जनता की तरफ से जो प्रतिक्रिया हुई, वह भी वैसी ही भयानक हुई, जैसी पंजाब में पाकिस्तान के निर्माण के वक्त हुई थी।

नागपुर से लेकर कोल्हापुर तक भयानक प्रतिक्रिया हुई। साने गुरुजी ने मुझसे आवाहन दिया कि महाराष्ट्र में घुमूं। जो पवनार को भी नहीं संभाल सका, वर्धा-नागपुर के लोगों पर असर न डाल सका, वह महाराष्ट्र घूमकर क्या करता? मैं चुप बैठा रहा।

राष्ट्रीय स्वयं सेवक की और हमारी कार्यप्रणाली में हमेशा विरोध रहा है। जब हम जेल में जाते थे, उस वक्त उनकी नीति फौज में पुलिस में दाखिल होने की थी। जहां हिन्दू-मुसलमानों का झगड़ा खड़ा होने की संभावना होती, वहां वे पहुंच जाते। उस वक्त की सरकार इन सब बातों को अपने फायदे की समझती थी। इसलिए उसने भी उनको उत्तेजन दिया। नतीजा हमको भुगतना पड़ रहा है।

आज की परिस्थिति में मुख्य जिम्मेवारी मेरी है, महाराष्ट्र के लोगों की है। यह संगठन महाराष्ट्र में पैदा हुआ है। महाराष्ट्र के लोग ही उसकी जड़ों तक पहुंच सकते हैं। ❑

प्रभावती बालवाड़ी का शुभारंभ

सर्व सेवा संघ परिसर, वाराणसी में 2 जनवरी 2018 को 'प्रभावती बालवाड़ी' का उद्‌घाटन किया गया। इस अवसर पर वरिष्ठ गांधीवादी डॉ. रामजी सिंह, पूर्व अध्यक्ष अमरनाथ भाई, प्रकाशन समिति वाराणसी के पूर्व संयोजक रामधीरज भाई एवं परिसर के संयोजक विजय भाई उपस्थित रहे।

2 जनवरी को बालवाड़ी के उद्‌घाटन के उपलक्ष्य में छोटा-सा कार्यक्रम परिसर संयोजक द्वारा आयोजित किया गया था, जिसमें आसपास के गरीब बच्चे एवं उनके अभिभावक, परिसर निवासी एवं शहर के लोग भी उपस्थित रहे। बालवाड़ी का उद्देश्य है कि आसपास के गरीब बच्चे-बच्चियों को निःशुल्क शिक्षा उपलब्ध करायी जाय।

इस आयोजन में सांस्कृतिक कार्यक्रम के साथ ही अतिथियों ने अपने महत्त्वपूर्ण विचार रखे और बच्चों को जागरूक किया।

–स. ज. प्रतिनिधि

और अन्ततः

क्या हम गांधी के जिन्दा शहीद हो सकते हैं?

30 की शाम मैं एक टैक्सी लेकर पूर्व निर्धारित समय के अनुसार गांधीजी से मिलने बिड़ला भवन की ओर चला लेकिन रास्ते में ही गांधीजी की घृणित और नृशंस हत्या की खबर मिली। बिड़ला भवन पहुंचा तो वहां बहुत भीड़ थी। केवल गांधीजी न थे, कमरे में उनका मृत शरीर पड़ा था। देश का संतरी सामने मरा पड़ा था और देश के राजा बने लोग आंसू बहा रहे थे। गांधीजी के विश्वस्त चेलों—नेहरू और पटेल के गद्दी पर रहते ही गांधी की हत्या हो गयी। मुझे गांधी की 'ईश्वर पर विश्वास' वाली कहावत याद आ गयी। मैं सोच रहा था कि ईश्वर में अटूट श्रद्धा रखने वाला, जिसने जिन्दगी भर अहिंसा का प्रचार किया, आज उसका हिंसा द्वारा हनन हुआ। यह कितनी ही विपरीत घटना थी! उस दिन लगा असली अर्थ में मैं पहली बार अनाथ हुआ। *—डॉ. राममनोहर लोहिया*

निःसंदेह गांधी की हत्या से भारत देश क्या पूरी दुनिया ही अनाथ हो गयी, सिवा राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के जो सारा दावा करता रहा है कि वह देश का सबसे बड़ा संतरी, रखवाला, सबसे बड़ा भक्त व सबसे बड़ा वफादार है। पिछले तीन वर्षों में आरएसएस की छद्म संस्थाओं द्वारा खासकर यह दिखाने की कोशिश की जा रही है कि आरएसएस और राष्ट्रभक्ति दोनों एक दूसरे के पर्याय हैं। राष्ट्रभक्ति का प्रमाण-पत्र बांटने का काम आरएसएस ने अपने सर उठा रखा है, जिससे न तो देश का संविधान, राष्ट्रध्वज और न ही धर्मनिरपेक्षता में विश्वास है।

सच्चाई यह है कि आरएसएस को भारत के स्वतंत्रता संग्राम से कोई लेना-देना नहीं था और स्वतंत्रता संग्राम में शहीदों को बड़ी हीन दृष्टि से देखता था। वर्तमान में भी आरएसएस दलितों और महिलाओं के बारे में जो अमानवीय दृष्टिकोण रखता है, यह देश में घटित विभिन्न घटनाओं से स्पष्ट है। सवाल पूछना तो देशद्रोह से जोड़ दिया गया है। एक तरफ गांधी से गौरी लंकेश तक की हत्याओं का सिलसिला जारी है तो दूसरी ओर बाबू बजरंगी और *लवजेहाद* के विरोध के नाम पर कुल्हाड़ी से काटकर जलाने वाले दहशतगर्द शम्भू सुपर स्टार बन रहे हैं। यह बात समझ नहीं आती कि आखिर संघ और भाजपाई धर्मनिरपेक्षता से इतना डरते क्यों हैं? सेक्यूलर शब्द एक गाली के सिवा उनके लिए कुछ क्यों नहीं है? अब तो यह भी स्पष्ट होने लगा है कि सामान्य सहिष्णुता के भी ये पोषक नहीं हैं। तर्क और विचार न कर पाने की अवस्था में ये लोग गुस्से में टी वी चैनलों के मंच छोड़कर निकलते पाये जा रहे हैं। गुजरात, उत्तर प्रदेश और अब महाराष्ट्र के भीमा कोरे गांव में दलितों पर हुए हमले ने पूरे देश को झकझोर कर रख दिया है। फलस्वरूप गुजरात में संघ की जमीन पैर तले से खिसकने लगी है।

पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी और गृह मंत्री लालकृष्ण आडवाणी आरएसएस के बारे में बता चुके हैं कि आरएसएस की हैसियत उनके लिए वही है जो नेहरू के लिए गांधी के लिए थी। उन्होंने दबी और मीठी जुबान से ही सही अपने को स्वयंसेवक घोषित किया लेकिन आरएसएस थोड़ी दूरी बनाये रखी और उसे एक सांस्कृतिक संगठन मात्र होने की बात की। लेकिन 2014 में सत्तासीन प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के जमाने में आरएसएस और उससे जुड़े संगठन अब खुली राजनीति में ही नहीं बल्कि असली रंग में मंत्रिमंडल में शामिल होकर मुख्य भूमिका में हैं। और, अपने को बड़े गर्व से आरएसएस का सदस्य बतला रहे हैं तथा ये देश को पाकिस्तान की तरह धार्मिक राष्ट्र में परिवर्तित करने में जुटे हुए हैं। देश में जो असामान्य घटनाएं दिखती हैं ये उनके लक्ष्य तक पहुंचने की कवायद की परिणाम हैं। देश का संघीय ढांचा और देश का संविधान उनके पैरों की बेड़ियां हैं, जिसे वो तोड़ना चाहते हैं।

हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि नरेन्द्र मोदी की सरकार पहली बार संविधान, धर्म और राजसत्ता के घालमेल कर स्थापित हुई है, जो भारतीय संविधान की मौलिक संरचना, जिसका मूल चरित्र धर्म निरपेक्षता है, उसके विपरीत है। भारतीय संविधान के तहत शासन में राजनीति और धर्म को मिलाया जाना निषिद्ध है और सर्वोच्च न्यायालय ने कई अवसरों पर धर्मनिरपेक्षता की विशद् व्याख्या की है। इसमें शक नहीं कि यदि स्वतंत्रता अंदोलन धर्म निरपेक्ष के बुनियादी सिद्धांत पर आधारित नहीं होता तो हम आजाद हो ही नहीं पाते। इतिहास गवाह है कि इसी बुनियादी सिद्धांत के कारण चाहे मुस्लिम लीग हो या हिन्दू महासभा दोनों स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान हाशिये पर धकेल दिये गये थे। चाहे वो दोनों राष्ट्रीयता के धार्मिक आधार पर विश्वास क्यों न करते रहे हों। शांति, अहिंसा, सामाजिक न्याय और साम्प्रदायिक सौहार्द से घृणा करने वाली जमात द्वारा राष्ट्रवाद के नाम पर लोगों को भयभीत करना एक षड्यंत्र और प्रपंच के सिवा और कुछ नहीं है। अगर देशवासी इस भीतरघात और प्रपंच के प्रति समय से सचेत न हो तो देश को विनाश से बचाना कठिन हो जायेगा।

गांधी जानते थे कि हिंसा और युद्ध की बातें लोगों के दिलों-दिमाग में जीवन प्रणाली, शिक्षा, सामाजिक, राजनैतिक संस्थाओं से आती हैं, जिनके जड़ों को उखाड़ना होगा। गांधी इसलिए राजनीतिक स्वतंत्रता और आध्यात्मिक विकास दोनों को साथ-साथ साधना चाहते थे। रचनात्मक कार्यक्रमों की मदद से जिसके लिए उन्हें 7 लाख गांव के लिए 7 लाख जीवित शहीद नवयुवकों की मांग की थी। वे समाज में अहिंसक क्रांति लाकर एक अहिंसक समाज का निर्माण करना चाहते थे और इसी मकसद से वे सवा सौ वर्ष जीना भी चाहते थे। हम इस बात की सही कल्पना कर सकते हैं कि यदि गांधी सवा सौ साल जीवित रहते तो वे अपना कितना पुरुषार्थ हमें दिखा जाते।

स्पष्टतः गांधीजी का अपना जीवन-दर्शन था, अपने सामाजिक सिद्धांत थे और राजकाज के विषय में उनकी अपनी एक अनुपम कल्पना थी। उन्हें न तो समाजवाद न तो साम्यवाद किसी की नकल करने जरूरत थी। स्वराज की कल्पना उनकी भारत की मिट्टी के अनुकूल थी, जिसे उन्होंने 'ग्रामस्वराज' और 'सर्वोदय' कहा था। गांधी के स्वराज का अर्थ है 'सत्य और अहिंसा' के आधार पर सामाजिक पुनर्निर्माण और राजनीति में मूलभूत परिवर्तन। गांधी इसीलिए राजनीति से भाग नहीं रहे थे। गांधी ने भांप लिया था कि यह संसद एक पेशेवर राजनीतिक संगठन बन सकती है और भविष्य में चुने हुए प्रतिनिधि एक पेशेवर नेता। इस खतरे से निपटने के लिए गांधी ने दो व्यावहारिक सुझाव दिये थे। एक, विधायक सरकार की नीतियों को पारदर्शी बनायें और जनता को सरकार के अन्यायपूर्ण और गलत नीतियों के खिलाफ खड़े होने के लिए जनता को शिक्षित करे। दूसरा, जनविरोधी कानूनों को बनने से रोके और ऐसे कानून बनाने का मार्ग खोले जो तामीरी काम में मददगार हो।

स्पष्टतः गांधी एक विचार है, जिन्हें लाख प्रयास के बाद भी मारा नहीं जा सकता। इसीलिए उनके जीवन-दर्शन को जन-जन तक पहुंचाना हमारा पहला कर्तव्य होना चाहिए। 'बापू 150' हमारे लिए और देश के लिए एक बड़ा अवसर है, जिसमें हम क्या देश के हर गांव में गांधी का एक जिन्दा शहीद खड़ा कर सकते हैं। **—अशोक मोती**

कविताएं

आओ बापू के अंतिम दर्शन कर जाओ

❑ हरिवंशराय बच्चन

आओ बापू के अंतिम दर्शन
कर जाओ,
चरणों में श्रद्धांजलियां अर्पण कर जाओ,
यह रात आखिरी उनके
भौतिक जीवन की,
कल उसे करेंगी, भस्म चिता की
ज्वालाएं।

डांडी के यात्रा करने वाले चरण यही,
नोआखाली के संतप्तों की शरण यही,
छू इनको ही क्षिति मुक्त हुई
चंपारण की,
इनको चापों ने, पापों के दल
दहलाए।

यह उदर देश की भूख
जानने वाला था,
जन-दुख-संकट ही इसका
नित्य नेवाला था,
इसने पीड़ा बहु बार सी
अनशन प्रण की
आघात गोलियां, के ओढ़े
बाएं-दाएं।

यह छाती परिचित थी
भारत की धड़कन से,
यह छाती विचलित थी
भारत की तड़पन से,
यह तानी जहां,
बैठी हिम्मत गोले-गन की
अचरज ही है, पिस्तौल इसे जो
बिठलाए।

इन आंखों को था बुरा देखना
नहीं सहन,
जो नहीं बुरा कुछ सुनते थे
ये वही श्रवण,
मुख यही कि जिससे कभी न निकला
बुरा वचन,
यह बंद-मूक, जग छलछुद्रों से
उकताए।

यह देखो बापू की आजानु भुजाएं हैं,
उखड़े इनसे गोराशाही के पाए हैं,
लाखों इनकी रक्षा-छाया में आये हैं,
ये हाथ सबल, निज रक्षा में
क्यों सकुचाए।

यह बापू की गर्वीली,
ऊँची पेशानी,
बस एक हिमालय की चोटी
इनकी सानी,
इससे ही भारत ने
अपनी भावी जानी,
जिसने इनको वध करने की
मन में ठानी
उसने भारत की किस्मत में
फेरा पानी,
इस देश-जाति के, हुए विधाता
ही बाएं।

जगाओ न बापू को, नींद आ गयी है

❑ 'शमीम' करहानी

जगाओ न बापू को, नींद आ गई है
अभी उठके आये हैं, बज़्म-ए-दुआ से
वतन के लिए, लौ लगाके खुदा से
टपकती है रूहानियत सी फ़ज़ा से
चली जाती है, राम की धुन, हवा से
दुखी आत्मा, शांति पा गई है
जगाओ न बापू को, नींद आ गई है।

ये घेरे है क्यों, रोने वालों की टोली
खुदारा सुनाओ न मनहूस बोली
भला कौन मारेगा बापू को गोली
कोई बाप के ख़ूं से, खेलेगा होली?
अबस, मादर-ए-हिन्द, शरमा गई है
जगाओ न बापू को, नींद आ गई है।

मोहब्बत के झंडे को गाड़ा है उसने
चमन किसके दिल का, उजाड़ा है उसने?
गरेबान अपना ही फाड़ा है उसने
किसी का भला क्या, बिगाड़ा है उसने?
उसे तो अदा, अम्न की भा गई है
जगाओ न बापू को, नींद आ गई है।

अभी उठके खुद वो, बिठायेगा सबको
लतीफ़े सुनाकर, हंसायेगा सबको
सियासत के नुक्ते बतायेगा सबको
नई रोशनी दिखायेगा सबको
दिलों पर सियाही सी क्यों छा गई है?
जगाओ न बापू को, नींद आ गई है।

वो सोयेगा क्यों, जो है सबको जगाता
कभी मीठा सपना, नहीं उसको भाता
वो आज़ाद भारत का है, जन्मदाता
उठेगा, न आंसू बहा, देश-माता
उदासी ये क्यों, बाल बिखरा गई है
जगाओ न बापू को, नींद आ गई है।

वो हक़ के लिए, तन के अड़ जाने वाला
निशां की तरह, रन में गड़ जाने वाला
निहत्था, हुकूमत से लड़ जाने वाला
बसाने की धुन में, उजड़ जाने वाला
बिना, ज़ुल्म की जिससे, थर्रा गई है
जगाओ न बापू को, नींद आ गई है।

वो उपवास वाला, वो उपकार वाला
वो आदर्श वाला, वो आधार वाला
वो अख़लाक़ वाला, वो किरदार वाला
लगन जिसकी, साहिल का सुख पा गई है
जगाओ न बापू को, नींद आ गई है।

कोई उसके ख़ूं से, न दामन भरेगा
बड़ा बोझ है, सर पर क्यों कर धरेगा
चराग उसका दुश्मन, जो गुल भी करेगा
अमर है अमर, वो भला क्या मरेगा
हयात उसकी, खुद मौत पर छा गई है
जगाओ न बापू को, नींद आ गई है।

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) के लिए महामंत्री, शेख हुसैन द्वारा सर्व सेवा संघ परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001 से प्रकाशित तथा प्रिन्टेक, इंडियन प्रेस कॉलोनी, मलदहिया, वाराणसी से मुद्रित। प्रधान संपादक : बिमल कुमार / संपादक : अशोक मोती।